तृतीय पुष्प :

निजामृतपान

[नाटक समयसार कलश का हिन्दी पद्यानुवाद]

रचयिता :
श्री १०८ आचार्य मुनि श्री विद्यासागर जी महाराज

सम्पादक :
डॉ० भागचन्द्र 'भागेन्दु'
अध्यक्ष-संस्कृत विभाग,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह (म० प्र०)

प्रकाशक :
श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक न्यास,
कार्यालय : स्टेशन रोड, दमोह (म०प्र०)
४७०–६६१

मूल्य आठ रुपया

निजामृतपान

•

पद्यानुवाद : आचार्य विद्यासागर जी,

•

चेतना की गहराई में : आचार्य विद्यासागर जी

•

प्राक्कथन : डॉ० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'

•

सम्पादक : डॉ० भागचन्द्र, 'भागेन्दु'

•

प्रथम संस्करण
१५०० प्रतियाँ

•

प्रकाशन वर्ष
१९७९ ई०

•

NIJAMRATPAN
Padyanuvad
By Acharya Vidyasagar Ji

•

Philosophy and Religion

•

मुद्रक :
अंकित प्रिंटिंग प्रेस,
शाही मौहल्ला, रोहतास नगर,
शाहदरा, दिल्ली-३२

अनुक्रम

प्राक्कथन : डॉ० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' — पाँच

प्रकाशकीय : जयकुमार इटोरिया — उन्नीस

इस ग्रन्थ की प्रकाशिनी संस्था का परिचय : सरोज कोठेलीय — इक्कीस

चेतना की गहराई में : आचार्य श्री विद्यासागर जी — १

निजामृतपान : — ९

१. रंग भूमिका — १०

२. जीवाजीवाधिकार — २४

३. कर्तृकर्माधिकार — ३०

४. पुण्यपापाधिकार — ५२

५. आस्रवाधिकार — ५८

६. संवराधिकार — ६४

७. निर्जराधिकार — ६८

८. बन्धाधिकार — ७०

९. मोक्षाधिकार — ७८

१०. सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार । — ९४

श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर (दमोह) की सुरम्य उपत्यका मे 'स्व'-समय की साधना में निमग्न :

श्री १०८ आचार्य विद्यासागर जी महाराज



अध्यात्म ज्ञान 'जिन'-बैन महान् वेत्ता, चारित्र मूर्ति तप मूर्ति घनान्ध छेत्ता।

आचार्य सन्त मुनि [illegible]

प्राक्कथन

निजामृतपान :

समय की जीवन्त प्रतिमूर्ति, दुर्द्धर साधक, कवि और भाषाविद् परम पूज्य श्री १०८ **आचार्य विद्यासागर जी** महाराज द्वारा हरिगीतिका छन्द मे रचित पद्यमय प्रस्तुत ग्रन्थ "**निजामृतपान**" स्व-पर-कल्याण हेतु आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए आत्मिक सुख की अनुभूति हो रही है।

यह ग्रन्थ श्रीमद् आचार्य अमृतचन्द्रसूरि-कृत "**नाटक समयसार कलश**" का हिन्दी पद्यानुवाद है। इस रचना की भाषा प्राजल, प्रवाहपूर्ण और शैली सरस, सुगम एवं हृदय-ग्राही है। छन्दो की गेयता पाठक और श्रोता को मन्त्रमुग्ध सा कर देती है।

चूंकि प्रस्तुत ग्रन्थ "**निजामृतपान**", आचार्य अमृतचन्द्र-सूरि कृत "नाटक समयसार कलश" का हिन्दी पद्यानुवाद है और "**नाटक समयसार कलश**" आ० अमृतचन्द्रसूरि की कृति होते हुए भी मूलत युगप्रवर्तक **आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी** के "**समय पाहुड़**" की **आत्म-ख्याति टीका**" नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत विषय की संक्षिप्तता को विश्लेषित करने की दृष्टि से रचित है। अत. यह आवश्यक है कि "निजामृतपान" की पृष्ठभूमि को पूर्णरूप से समझने की दृष्टि से दोनो महान् आचार्यों—श्री कुन्दकुन्द तथा श्री अमृतचन्द्रसूरि और प्रस्तुत रचना (निजामृतपान) से सम्बन्धित मूल कृतियो एव उनके दार्शनिक-आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक अवदान से आपको परिचित कराऊँ।

इसी दृष्टि से **प्रस्तुत प्राक्कथन** में सर्वप्रथम आ० कुन्दकुन्द एवं उनके समयसार (समय पाहुड़) के महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक अवदान की विवेचना की है। तदनन्तर आचार्य अमृतचन्द्रसूरि और उनके "नाटक समयसार कलश" पर यथावश्यक प्रकाश डाला है। और तब "निजामृतपान" के रचयिता प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज के सम्बन्ध में अपनी मनोभावनाएं पस्तुत की हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द :

आचार्य **कुन्दकुन्द** आत्मरसानुभवी महर्षि थे। जैन आचार्य-परम्परा मे उनका स्थान

मूर्धन्य है। वे युग-संस्थापक आचार्य माने जाते है। प्रत्येक मांगलिक कार्य के प्रारम्भ में जिन चार मंगलों का नाम-स्मरण किया जाता है, उनमे एक नाम आचार्य कुन्दकुन्द का भी सम्मिलित है। तद्यथा

> मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
> मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

(जिस प्रकार भगवान् महावीर, गौतम गणधर और जैनधर्म मगल-स्वरूप हैं, उसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द भी मगलरूप है।)

श्रमण संस्कृति के समुन्नयन मे आ० कुन्दकुन्द का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे दीर्घ तपस्वी, अनेक ऋद्धियो के धारक और महान् विद्वान् श्रमण थे। इनके परवर्ती आचार्यों ने अपने आपको "कुन्दकुन्द के अन्वय (वंश) या आम्नाय" का बताते हुए गौरव का अनुभव किया है। और अनेक आचार्यों ने इनका अनुकरण किया है। इन जैसा प्रतिभाशाली आचार्य अध्यात्म और द्रव्यानुयोग के क्षेत्र मे अन्य कोई दिखायी नहीं पडता।

इनका प्रामाणिक एवं विस्तृत जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं है, पुनरपि प्रशस्तियों, पट्टावलियों, शिलालेखों आदि के आधार पर कुछ तथ्य इकट्ठे किये गये है।[1]

आ० कुन्दकुन्द ईस्वी सन् प्रथम शताब्दी के विद्वान् माने गये हैं।[2]

---

१. ऐसे विवरणों के विस्तार के लिए देखिए—
(अ) तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, प्रथम खण्ड, पृ० ९९-१०६
(ब) समयसार : समय-प्रमुख विद्यानन्द मुनि, सम्पादक : पं० बलभद्र जैन, भूमिका, पृ० ३-४

२. (अ) डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन
'The jaina sources of the History of Ancient India' P. 124-125.
(ब) डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा : (सागर, १९७४ ई०), पृ० १०७-११?
(स) समयसार : कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन (दिल्ली, १९७८ ई०), पृ० ३-४
(द) पं० कैलासचन्द्र शास्त्री; जैन साहित्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ११९

कुन्दकुन्द की कृतियां :

ऐसी जनश्रुति है कि आ० कुन्दकुन्द ने ८४ पाहुड़ों की रचना की। पाहुड़ (प्राभृत)[1] शब्द प्राचीन द्वादशाग से सम्बन्धित है। आचार्यप्रवर ने भी अपने ग्रन्थों का नाम "पाहुडान्त" रखा है किन्तु अब तक उपलब्ध ग्रन्थों में—

१—प्रवचनसार

२—समयसार और

३—पंचास्तिकाय

ये तीन बहुत विश्रुत हैं।

आचार्यश्री के अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थो के नाम इस प्रकार है :—नियमसार, बारस अणुवेक्खा, दंसण पाहुड़, चारित्त पाहुड़, सुत्त पाहुड़, बोह पाहुड, भाव पाहुड़, मोक्ख पाहुड़, लिग पाहुड, सील पाहुड, रयणसार, सिद्धभत्ति, सुदभत्ति, चारित्र भत्ति, जोइभत्ति, आयरिय भत्ति, णिव्वाण भत्ति, पंचगुरु भत्ति, तित्थयर भत्ति आदि।

समयसार का महत्त्व :

समयसार आचार्य कुन्दकुन्द के आत्मवैभव का परिचायक है। यह सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक ग्रन्थ है। समयसार मे आत्मानुभूति का दिव्यप्रकाश है, किन्तु उसे देखने के लिए अपनी आत्मा को ऊर्ध्वमुखी करना ही होगा। आ० **कुन्दकुन्द** स्व-समय के मन्त्रद्रष्टा थे, केवल मन्त्र-प्रस्तोता नही।

समयपाहुड़ अथवा समयसार :

आ० कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थ की प्रथम और अन्तिम गाथा मे इसे "**समय पाहुड़**" कहा है, किन्तु यह ग्रन्थ "**समयसार**" नाम से सुप्रसिद्ध है। इस नामकरण की प्रसिद्धि का कारण यह है कि—समयपाहुड़ के टीकाकार श्री **अमृतचन्द्र-सूरि** ने "भवतु **समयसार** व्याख्ययैवानुभूते (३) और श्री **जयसेनाचार्य** ने "वक्ष्ये समयसारस्य वृत्ति तात्पर्यसञ्ज्ञिकाम् ॥१॥" कहकर इसे '**समयसार**' के नाम से प्रसिद्धि प्रदान की। वही नाम यथावत् आज भी प्रचलन मे है।

यहा यह तथ्य विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि समयसार के विषयों का वर्गीकरण भी इन्होंने ही किया है।

---

१. "प्रकृष्टेन तीर्थंकरेण आभृतं प्रस्थापितं इति प्राभृतम्। प्रकृष्टैराचार्यैर्विद्या-वित्तवद्भिराभृतं धारितं व्याख्यानमानीतमिति वा प्राभृतम्।
—क० पा०, भाग १, पृ० ३२५
'प्राभृत' शब्द शास्त्र का परिचायक है।

समय

समय शब्द का अर्थ :

समय का अर्थ आत्मा है और **सार** का अर्थ है शुद्ध स्वरूप। अर्थात् आत्मा का शुद्ध स्वरूप। शुद्ध आत्मा का इतना सुन्दर और व्यवस्थित वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने **पंचास्तिकाय** में लिखा है कि—

"जिनेन्द्र देव ने पाँच अस्तिकायों (जीव, पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाश) के समवाय को **"समय"** कहा है तद्यथा—

समवाओ पंचण्हं समउत्ति जिणुत्तमेहिं पण्णतं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं ॥

—**पंचास्तिकाय, गाथा ३**

और 'समयपाहुड़' (गाथा २) मे समय के **दो भेद** किये है—स्व-समय और पर-समय। जो जीव शुद्ध रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् आचरण) रूप आत्म-स्वभाव में अवस्थित है वह "स्व-समय" है; और जो जीव पौद्गलिक कर्मजन्य भावो में स्थित है वह "पर-समय" है। इस प्रकार आचार्यप्रवर ने जीव अथवा आत्मा को ही **"समय"** कहा है।

समय पाहुड़ की इस (गाथा क्र० दो) की टीका मे आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने **"सम्"** उपसर्गपूर्वक **"अय्"** धातु से समय शब्द की निष्पत्ति की है। तदनुसार "सम्" अर्थात् एक रूप से "अयति" अर्थात् सबको एक साथ जानता है—वह "समय" अर्थात् जीव या आत्मा है।

पंचास्तिकाय में पाँचों द्रव्यों के समवाय को "समय" कहा है और समयसार में जीव या आत्मा को ही "समय" कहा है। इस कथन का कारण यह है कि पंचास्तिकाय मे मुख्य रूप से पाँचों द्रव्यो का विवेचन है तथा **समयसार** में प्रमुखतया केवल जीव तत्त्व का ही विश्लेषण हुआ है।

आ० अमृतचन्द्र ने समयसार (गाथा ३) की टीका मे लिखा है—कि यहाँ "समय" शब्द से सभी पदार्थ कहे गये है। क्योकि सभी द्रव्य "सम्" (एक रूप मे) अपने गुणपर्यायों को "अयन्ति" प्राप्त करते है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार "पचास्तिकाय" मे "समय" शब्द का जो अर्थ किया है—वह भी समुचित रीति से घटित हो जाता है और "समयसार" में समय का जो अर्थ जीव किया है वह भी घटित होता है।

किन्तु श्री कुन्दकुन्द आचार्य द्वारा विहित **"समय"** शब्द का ऐसा अर्थ अन्यत्र प्राप्त नहीं होता है।

अत. यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि **"समय"** शब्द का अर्थ **आत्मा केवल श्री कुन्दकुन्दाचार्य** ने ही किया है और उसी का कथन **समयसार** में है।

इनके ग्रन्थों की भाषा "शौरसेनी प्राकृत" है। तथा

शैली सरल और स्पष्ट है। उन्होंने जो कुछ कहा है बहुत सीधे-सादे शब्दों में कहा

है। अध्यात्म जैसे गूढ़ विषय का प्रतिपादन विविध उदाहरणों के द्वारा बहुत सरल रीति से किया है। वह माता के दूध की तरह सुपाच्य और अविकारी है। उनकी प्रतिपादन शैली से कुन्दकुन्द की अगाध विद्वत्ता का स्पष्ट परिचय मिलता है। वे अनेक दर्शनों के पण्डित है। वे अपूर्व प्रतिभा के धनी और शास्त्रपारंगत विद्वान् है।

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि :

श्री अमृतचन्द्र सूरि **जैन दार्शनिक विद्वानों की मणिमाला में अग्रगण्य हैं।** "आ० कुन्दकुन्द के पश्चात् यदि किसी का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है तो वे अमृतचन्द्र ही है।"[1] सारस्वताचार्यो मे अमृतचन्द्रसूरि का वही स्थान है जो स्थान संस्कृत काव्य-रचयिताओ मे कालिदास के टीकाकार मल्लिनाथ का है। ऐसी प्रसिद्धि है कि यदि मल्लिनाथ न होते, तो कालिदास के ग्रन्थो के रहस्य को समझना कठिन हो जाता। उसी प्रकार यदि अमृतचन्द्रसूरि न होते, तो आ० कुन्दकुन्द के रहस्य को समझना कठिन हो जाता। अतएव आ० कुन्दकुन्द के व्याख्याता के रूप मे और मौलिक ग्रन्थ प्रणेता के रूप में आ० अमृतचन्द्रसूरि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सस्कृत ओर प्राकृत भाषाओ पर उनका असाधारण अधिकार है। वस्तुत इनकी विद्वत्ता, वाग्मिता और प्राजल शैली अप्रतिम है। वे मूलसघ के अनुयायी बहुत निस्पृह आध्यात्मिक आचार्य थे। इसका परिचायक है— "**पुरुषार्थसिद्ध्युपाय**" का अन्तिम पद्य—

वर्णैः कृतानि चित्रैः पदानि तु पदैः कृतानि वाक्यानि।
वाक्यैः कृत पवित्र शास्त्रमिद न पुनरस्माभिः ॥ २२६ ॥

(अनेक प्रकार के वर्णो मे पद बन गये है, पदो से वाक्य बन गये और वाक्यो से यह पवित्र शास्त्र बन गया इसमे मेरा कर्तृत्व कुछ भी नही है।)

इस पद्य मे उनकी कितनी निस्पृहता ओर आध्यात्मिकता ध्वनित होती है, यह ध्यान देने योग्य बात है। वे अपने को आत्मभावो का कर्ता मानते है, 'पर'-वस्तु का नही।

आ० अमृतचन्द्रसूरि वि० सवत् १०५५ से पहले हो गये है।[2]

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थो की **अनेक गाथायें** आ० यतिवृषभ की तिलोय पण्णात्ति, पूज्यपाद स्वामी की सर्वार्थसिद्धि, भट्ट अकलक-देव के तत्त्वार्थवार्तिक और विद्यानन्द की अष्टसहस्त्री मे प्राप्त होती है। किन्तु इन सबके परवर्ती आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने ही सर्व-प्रथम कुन्दकुन्द के ग्रन्थो – समयसार, प्रवचन सार और पचास्तिकाय पर अपनी टीकाएँ लिखी है। यदि यह कहा जाय कि अमृतचन्द्र सूरि के प्रयत्नो से प्रकाशित होकर उनसे पूर्व उपेक्षित कुन्दकुन्द जिनशासन के सिरमौर बन गये, तो कोई अत्युक्ति नही होगी। भगवान् महावीर और गौतम-गणधर के पश्चात् कुन्दकुन्द का ही स्मरण किया जाने लगा और

---

१. पं० कैलासचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास, द्वितीय भाग, (वाराणसी, वी० नि० सं० २५०२) पृ० १७२

२. (क) जैन सा० इति०, द्वि० भा०, पृ० १७६
(ख) तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ० ४०५

दिगम्बर जैन आम्नाय कुन्दकुन्दाम्नाय कही जाने लगी। भट्टारक परम्परा के आचार्यों ने भी प्रायः अपने को कुन्दकुन्दाम्नायी माना। कुन्दकुन्द का संघ 'मूलसंघ' कहलाया। क्या इस सबका श्रेय आ० अमृतचन्द्र सूरि को देना उचित होगा? एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है—**"गुन न हिरानो, गुनगाहक हिरानो है"**। अभिप्राय यह है कि आ० कुन्दकुन्द के समयसार में जो गुण विद्यमान थे उन गुणों का ग्राहक आ० अमृतचन्द्र सूरि से पहले हिराया (गुमा) हुआ था।

यद्यपि दर्शनशास्त्र और सिद्धान्त के अनेक मर्मज्ञ बडे-बड़े दिग्गज आचार्य और ग्रन्थकार हुए है किन्तु अध्यात्मरस की सरिता मे अपने को निमज्जित कर देने वाले आ० अमृतचन्द्र ही हुए। उन्होने ही अध्यात्मतरंगिणी नही, अध्यात्म-सागर का अवगाहन करके उसमें से अध्यात्मतरगिणी का प्रादुर्भाव किया।[1]

अध्यात्म के प्रवर्तक होकर भी इन दोनों आचार्यों ने जैन सिद्धान्त और आचार (व्यवहार) दोनों का प्रतिपादन किया है।

रचनाएं :

आ० अमृतचन्द्र सूरि की निम्नलिखित रचनाएं प्राप्त हैं। इनकी रचनाओं को दो श्रेणियो में विभक्त किया जा सकता है : (१) मौलिक रचनाएं, और (२) टीका ग्रन्थ।

१. मौलिक रचनाएं : (१) पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय,
(२) तत्त्वार्थ सार,
(३) समयसार कलश,
(४) लघुतत्त्व स्फोट :
यह कृति २५-२५ श्लोकों के २५ अध्यायों में विभक्त है।[2]

२. टीका ग्रन्थ : (५) समयसार की आत्मख्याति नामक टीका,
(६) प्रवचनसार की तत्त्वदीपिका टीका, और
(७) पंचास्तिकाय की तत्त्वप्रदीपिका टीका।

*यद्यपि आ० अमृतचन्द्र सूरि की उक्त सभी रचनाएं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, पुनरपि हम यहां प्रस्तुत प्रकाशन **"निजामृतपान"** के मूलस्रोत **"समयसार टीका"** और **"समयसार कलश"** से ही आपको परिचित करा रहे है।*

---

१. अध्यात्म अमृतकलश, प्राक्कथन —पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, (टीकाकार पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री), (कटनी, १९७७ ई०) पृ० ७

२. इस ग्रन्थ की जानकारी कुछ समय पूर्व ही हुई है। इसके विषय में डॉ० (पं०) पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने एक आलेख 'जैन संदेश' के अंक दि० २३-११-७८ में पृष्ठ १४५ पर प्रकाशित भी कराया है।

समयसार टीका (आत्मख्याति) :

समयसार कलश और नाटक समयसार कलश :

आ० अमृतचन्द्र सूरि की "समयसार टीका" '**आत्मख्याति**' के नाम से बहुत प्रसिद्ध है। इसमें उन्होंने गाथा के शब्दों का व्याख्यान न कर उसके अभिप्राय को अपनी परिष्कृत गद्य शैली में स्पष्ट रूप से विश्लेषित किया है। उन्हें जहाँ गाथा के मूलभाव में कोई कमी अनुभव में आयी है वहाँ उन्होंने "**समयसार कलश**" नाम से सुमधुर पद्य की भी संयोजना—रचना कर दी है।

यद्यपि यह "समयसार कलश" उक्त "समयसार टीका" (आत्मख्याति) मे मिश्रित है, पुनरपि विषय की स्पष्टता और विवेचन की परिपूर्णता के कारण उसका ग्रन्थ रूप में स्वतन्त्र अस्तित्व भी है।

समयसार कलश :

समयसार-कलश वास्तव मे आ० श्री कुन्दकुन्द के समयसार पर कलश रूप मे लिखा गया है। इसका विषय-वर्गीकरण भी आ० कुन्दकुन्द के विषयो के समान ही है। इसमें कुल २७८ पद्य है, जो निम्नांकित अधिकारो मे विभक्त है :

१. पूर्वरंग
२. जीवाजीवाधिकार
३. कर्तृकर्माधिकार
४. पुण्यपापाधिकार
५. आस्रवाधिकार
६. संवराधिकार
७. निर्जराधिकार
८. बन्धाधिकार
९. मोक्षाधिकार
१०. सर्व विशुद्ध ज्ञानाधिकार
११. स्याद्वादाधिकार
१२. साध्यसाधकाधिकार।

आ० कुन्दकुन्द के "समय पाहुड़" में जिन स्थलो पर प्रमेय स्पष्ट नहीं थे वहाँ "कलश" अथवा "आत्मख्याति" टीका द्वारा ही सुस्पष्टता प्रस्तुत कर अमृतचन्द्र सूरि ने जैन तत्त्वज्ञान को समृद्ध बनाया है। उन्होने अपनी टीका में "समय पाहुड़" के भाव को छन्दोबद्ध करने की दृष्टि से जिन पद्यों की संयोजना—रचना की है; उन्हे "समयसार कलश" नाम प्रदान करने वाले विद्वान् ने बहुत प्रशस्य कार्य किया है। वास्तव मे वे पद्य समयसार रूपी मन्दिर के शिखर पर कलश-स्वरूप ही हैं। आचार्य ने इस प्रौढ़ रचना मे "समयसार (आत्मख्याति) टीका" के फलितार्थ स्वरूप आल्हादक छन्दों में समयसार का नवनीत

निकालकर रख दिया है। वस्तुत: अमृतचन्द्र सूरि की 'समयसार टीका' यदि अध्यात्म रस का सागर है तो ये पद्य उस रसामृत के कलश (घट) है।

ये पद्य ही 'नाटक समयसार कलश' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रवर्तित हुए हैं।

नाटक समयसार कलश :

अमृतचन्द्र सूरि ने समयसार टीका को नाटक के समान अंको में विभाजित किया है। प्रथम अंक से पूर्व प्रारम्भिक भाग को पूर्वरंग कहा गया है। जिस प्रकार नाटक मे पात्रों का निष्क्रमण और प्रवेश होता है उसी प्रकार इस कृति मे भी प्रवेश और निष्क्रमण कराया गया है।

प्रथम अंक : जीवाजीवाधिकार है। इसमे जीव को अजीव से भिन्न बतलाया है और अन्त में लिखा है कि 'जीवाजीवौ पृथग्भूत्वा निष्क्रान्तौ' (जीव और अजीव पृथक्-पृथक् होकर चले गये।)

द्वितीय अंक कर्तृकर्माधिकार के प्रारम्भ मे सूचित किया है कि 'जीव अजीव ही कर्त्ता और कर्म का वेष धारण कर प्रवेश करते है तथा अन्त में लिखा है कि—'जीव और अजीव कर्त्ता और कर्म का वेष छोड कर निकल गये।'

तृतीय पुण्य-पापाधिकार के आरम्भ मे लिखा है कि 'एक ही कर्म पुण्य और पाप के रूप मे—दो पात्रो का वेष धारण कर प्रवेश करता है।' और अन्त मे लिखा है कि पुण्य और पाप के रूप से दो पात्रो का वेष धारण करने वाला कर्म एक-पात्र-रूप होकर निकल गया। अर्थात् कर्म मे पुण्य-पाप का भेद मिथ्या है, दोनो मे कोई अन्तर नही है।

इसी प्रकार **आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध** और **मोक्ष अधिकारों में** उन-उन तत्त्वो का प्रवेश और निर्गमन कराया गया है।

वस्तुत यह संसार एक रंगमंच है जिस पर जीव और अजीव विभिन्न प्रकार के रूप धारण करके अभिनय करने मे प्रवृत्त है।

ये पद्य आचार्य अमृतचन्द्रसूरि की सरस, सुबोध और भावपूर्ण **कवित्व शक्ति** के जाज्वल्यमान उदाहरण है। उनकी भाषा भावो के अनुरूप है। उनका पाण्डित्य जितना गम्भीर और तलस्पर्शी है, उसको व्यक्त करने वाली भाषा भी उसी के अनुरूप स्वाभाविक धारा में प्रवाहित है। अत. अत्यन्त श्रद्धापूर्वक कह सकता हूँ कि वे आध्यात्मिक कवियों के मुकुटमणि हैं।

निजामृत-पान के रचयिता :

'निजामृत-पान' के रचयिता है स्व-पर-भेद-विज्ञानी परम पूज्य प्रात: स्मरणीय तपोनिधि श्री **१०८ आचार्य विद्यासागर जी महाराज**। वे बीसवी शताब्दी के आदर्श मुनि-पुंगव है। वे महान् ज्ञानी, ध्यानी, बहुश्रुताभ्यासी, सिद्धान्तज्ञ, अध्यात्मवेत्ता, अध्यात्मरसिक,

संस्कृत-प्राकृत अपभ्रंश, कन्नड़, मराठी, अंग्रेजी, हिन्दी आदि विविध भाषाओं के तलस्पर्शी **विद्वान् और** उद्भट तपस्वी हैं। **अध्यात्म चिन्तन की ऊँचाई और कवित्व की गहराई का 'मणिकांचन योग'** उनमें है। वे विचारक है, सुकवि हैं और है **आत्म विवेचक-समीक्षक।**

वृत्ति से निर्लिप्त, स्वभावतः निःस्पृही—अपरिग्रही और चर्या में निरन्तर सावधान आचार्य प्रवर के सम्बन्ध में **पं० दौलतराम जी** की निम्नांकित पंक्तियाँ पूर्णरूप से घटित होती है—

समता सम्हारें, थुति उचारे, वन्दना जिनदेव को;
नित करें श्रुतिरति, करें प्रतिक्रम, तजें तन अहमेव को।
जिनके न न्हौन, न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन;
भू माहि पिछली रयनि में कछु शयन एकाशन करन ॥५॥
इक बार दिन में लें अहार, खड़े अलप निज-पान में
कचलोंच करत न डरत परिषह सों, लगे निज ध्यान में।
अरि मित्र महल मसान कञ्चन, काँच निन्दन थुति करत,
अर्घावतारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन ॥६॥

—छहढाला, ६, ५-६.

आचार्य विद्यासागर जी वस्तुत विद्या के सागर है और आचार्य भी हैं। वे सच्चे अर्थों में **जैन साधु** है। क्योंकि स्व-संवेद्य समरसानन्द की सहज अनुभूति से **समुल्लसित** 'स्वरूप' की साधना में रत स्वात्मा का अवलोकन करने वाले श्रमण निर्ग्रन्थ सहज ही आतमाराम में विचरण करने वाले परमार्थ में 'जैन साधु' कहे जाते हैं।

इस शताब्दी में आचार्यश्री ने **श्री जम्बूस्वामी** के पुरातन इतिहास की पुनरावृत्ति की है। जिनके पिता मुनि, माता आर्यिका, दोनों बहिनें आर्यिकाएं, तीन में से दो भाई **ऐलक व्रती दीक्षित** है। मात्र एक भाई उदासीनभाव में गृहस्थाश्रम में **प्रवृत्त** है। ये **सब पूर्व-भव के कैसे** संस्कारसम्पन्न जीव हैं कि जिनका समस्त परिवार गृहत्याग कर आत्मकल्याण **में प्रवृत्त है। धन्य, धन्य।**

जीवन-झाँकी :

आचार्य विद्यासागर जी का परिचय संक्षेप में निम्नलिखित तालिका से **सहज ही प्राप्त हो सकता है** :

जन्म तिथि : विक्रम सम्वत् २००३ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा
जन्म स्थान : सदलगा, जिला—बेलगाँव (कर्नाटक)
शैशवावस्था का नाम : विद्याधर
पितृनाम : श्री मल्लप्पा जी (सम्प्रति मुनि श्री मल्लिसागर जी)
मातृनाम : श्री श्रीमती जी (सम्प्रति आर्यिका समयमती जी)
भाई : आचार्य श्री के अतिरिक्त अन्य तीन भाई, जिनमें से दो ऐलक व्रतधारी हैं **प्रथम** ऐलक योगसागर जी एवं द्वितीय ऐलक समयसागर जी के नाम से दीक्षित होकर आत्म कल्याण में प्रवृत्त है।
मातृभाषा : कन्नड़

शेष पृष्ठ

दीक्षाक्रम :

विरक्ति के बीज बाल्यावस्था से ही अंकुरित होते रहे । अंकुरित विरक्ति-भाव के **पौधे का सिंचन** किया चारित्रचक्रवर्ती **आचार्य शान्तिसागर जी** के उपदेशामृत ने । तदनन्तर **आचार्य देशभूषण** जी से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया ।

मुनिदीक्षा : आषाढ़ सुदी ५, संवत् २०२५ (तदनुसार ३० जून १९६८ ई०) अजमेर में ।

आचार्य पद : मगसिर कृष्ण २, सवत् २०२९ (तदनुसार २२ नवम्बर, १९७२ ई०) नसीराबाद (उ० प्र०) मे ।

भाषाओं तथा विद्याओं में वैदुष्य :

आचार्यश्री को जहाँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में प्रकाम पाण्डित्य प्राप्त है वहीं दर्शन, इतिहास, संस्कृति, न्याय, व्याकरण, साहित्य, मनोविज्ञान और योग विद्याओं मे अनुपम वैदुष्य भी उपलब्ध है ।

आचार्यश्री के आशुकवित्व एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व (PRESENCE OF MIND) अत्यन्त प्रशस्य गुण है ।

आचार्यश्री के माननीय गुरु :

आचार्य विद्यासागर जी, परमपूज्य **आचार्य ज्ञानसागर जी** के पट्ट शिष्य है ।

आ० ज्ञानसागर जी गृहस्थावस्था मे **पं० भूरामल जी छाबड़ा शास्त्री** के नाम से प्रसिद्ध थे । उन्होंने श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे प्रविष्ट होकर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की संस्कृत साहित्य शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी । आप आजीवन ब्रह्मचारी रहे । आपका संस्कृत भाषा का ज्ञान उच्चकोटि का था और कविता-शक्ति तथा आध्यात्मिक ज्ञान बढ़ा-चढ़ा था । संस्कृत मे **जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, भद्रोदय, दयोदय, विवेकोदय** आदि महाकाव्य ग्रन्थों की रचना आपने जैन पुराणों की कथा के आधार पर करके भगवती जिनवाणी की अनुपम सेवा की है । आपका सम्यक्त्व-सारशतक और समयसार तथा जिन-सेनाचार्य टीका का हिन्दी अनुवाद महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है । विक्रम स० २०१६ मे आपने जयपुर में श्री १०८ आ० शिवसागर जी से मुनिदीक्षा ग्रहण की थी ।

वार्धक्य एवं शोकाक्रान्त शरीर को देखकर आत्मा की रत्नत्रय-निधि की रक्षार्थ आपने अपना आचार्य-पद अपने युवा-शिष्य श्री १०८ मुनि विद्यासागर जी को प्रदान कर सल्लेखना धारण की और मृत्युंजय हो गये ।

आ० ज्ञानसागर जी का समाधिमरण नसीराबाद (उ० प्र०) मे १ जून १९७३ को ८० वर्ष की उम्र मे शान्ति एवं निराकुलतापूर्वक हुआ ।

ग्रन्थ प्रणेता आ० विद्यासागर जी :

आ० विद्यासागर जी स्व-साधना के साथ निरन्तर ज्ञानाभ्यास में प्रवृत्त रहते है। प्रत्येक क्षण कितना बहुमूल्य है और उसका कैसे उपयोग करना चाहिए यह आचार्यश्री के सान्निध्य से सीखना चाहिए।

आपने अनेक ग्रन्थो का प्रणयन कर भगवती श्रुतदेवता की महती आराधना की है। आपके द्वारा रचित-प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार है :

१—योगसार का हिन्दी पद्यानुवाद

२—इष्टोपदेश का हिन्दी पद्यानुवाद

३—समाधितन्त्र का पद्यानुवाद

४—एकीभाव स्तोत्र (मन्दाक्रान्ता छन्द में) पद्यमय अनुवाद

५—कल्याण मन्दिर स्तोत्र (वसन्ततिलक छन्द में) पद्यानुवाद

६—निजानुभव शतकम्

७—श्रमण शतकम् : संस्कृत तथा हिन्दी मे पद्यमय कृति।

८—भावना शतकम् : संस्कृत तथा हिन्दी में पद्यमय कृति (आद्यन्त यमकालंकार) इस कृति की संस्कृत टीका पं० (डॉ०) पन्नालाल जी साहित्यचार्य ने की है।

९—जैनगीता (समण सुत्तं का वसन्ततिलका छन्द मे) हिन्दी पद्यानुवाद

१०—निरंजन शतकम् (संस्कृत-द्रुतविलम्बित तथा हिन्दी वसन्ततिलक छन्द मे) पद्यमय रचना

११—कुन्दकुन्द का कुन्दन : समयसार का वसन्ततिलका छन्द में हिन्दी पद्यानुवाद

१२—मुक्तक शतकम्

१३—तीर्थ शतकम्

१४—**निजामृतपान** : अमृतचन्द्र सूरि के 'नाटक समयसार कलश' का हिन्दी पद्यानुवाद। (**प्रस्तुत प्रकाशन**)।

आचार्यश्री की लेखनी अबाधगति से निरन्तर चलती रहती है। वे सिद्धहस्त ग्रन्थ रचयिता और तत्त्वोपदेशक है। हमारी मनोभावना है कि वे चिरायु हो तथा उनकी लेखनी और वाणी से युग-युगो तक मानवता का उद्धार होवे।

शिष्य परम्परा :

इस समय आचार्यश्री की शिष्य परम्परा मे निम्नलिखित साधु है :

श्री १०५ ऐलक दर्शनसागर जी

श्री १०५ क्षु० स्वरूपानन्द जी

श्री १०५ क्षु० नियमसागर जी

श्री १०५ ऐ० योगसागर जी
श्री १०५ क्षु० समयसागर जी
श्री १०५ क्षु० चारित्रसागर जी।

वर्षा योग :

आपके **चातुर्मास** अब तक निम्नलिखित स्थानों में सम्पन्न हुए है .

१९६८ अजमेर (सोनी जी की नसिया)
१९६९ अजमेर (केशरगंज)
१९७० किशनगढ़ रैनवाल (राज०)
१९७१ मदनगंज, किशनगढ़
१९७२ नसीराबाद (उ० प्र०)
१९७३ ब्यावर (राजस्थान)
१९७४ अजमेर (सोनी जी की नसिया)
१९७५ फिरोजाबाद (उ० प्र०)
१९७६ कुण्डलपुर (दमोह) म० प्र०
१९७७ कुण्डलपुर (दमोह) म० प्र०
१९७८ रेशदीगिरि (नैनागिरि)
(छतरपुर, म० प्र०)

महातपस्वी :

स्व० आ० ज्ञानसागर जी से विद्या-व्रत दीक्षित आ० विद्यासागर जी लोकैषणा से सर्वथा दूर, विशाल संघ के आडम्बर से रहित तथा विद्याओं के अगाधसागर में निरन्तर अवगाहन करते है। साधु की चर्या के सावधानीपूर्वक पालनकर्ता वे जन-जन की श्रद्धा के आस्पद है। वस्तुत वे परीषहजयी महान् तपस्वी है। उनके चरणारविन्दों में कोटिश नमन।

सौभाग्य इस प्रान्त का :

बुन्देलखण्ड की ओजस्विनी वसुन्धरा को आचार्यश्री के **तीन वर्षा-योग** प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। निश्चित ही यह इस प्रान्त का सौभाग्य ही है। अपूर्व पुण्य के उदय से हम सबने अनेक बार इस महान् तपस्वी के दर्शन और प्रवचन का लाभ प्राप्त किया है। उनके दर्शन से जिस अद्भुत सुख-शान्ति की उपलब्धि होती है वह वर्णनातीत है—गूंगे की मिठाई की तरह—केवल अनुभवगम्य है। उनकी वाणी में अभूतपूर्व शक्ति है—एक प्रकार का जादू है। उनके द्वारा पथभ्रान्त-भव-भ्रमण-भीरुजनो को सदा पथप्रदर्शन प्राप्त होता रहे, यही मनोकामना है।

निजामृतपान का प्रकाशन :

गतवर्ष अतिशय क्षेत्र पटेरिया जी (गढ़ाकोटा, जिला सागर, मध्य प्रदेश) के वार्षिक

मेलूर से अपने साथियों सहित वापस लौट रहा था कि मार्ग मे विदित हुआ कि आचार्यश्री ससंघ दमोह से प्रस्थित होकर बांसा-तारखेड़ा में विराजमान है। यद्यपि रात्रि हो गयी थी, पुनरपि आचार्यश्री और संघस्थ साधुओ के दर्शन हेतु हम लोग बांसा-तारखेड़ा के जैन मन्दिर में पहुंचे। पूज्यश्री के दर्शन किये। उसी दिन उन्होंने **"निजामृतपान"** के लेखन का शुभारम्भ किया था और दिनाक १६-११-७८ को जब हम लोग कुण्डलपुर जी क्षेत्र पर पहुंचे, आचार्यश्री के दर्शन कर जिज्ञासु भाव से उनके निकट बैठ गये। आचार्यश्री की प्रसन्न-सौम्य-मुद्रा के बीच उनकी मन्द मुस्कान को सहज ही समझा जा सकता है। मेरे पूछने पर आचार्यश्री ने कहा—जिस दिन इस ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ किया था **उस दिन तुम सामने थे और आज जब इसे पूर्ण कर रहा हूं—तब भी तुम सामने हो**। आचार्यश्री की वाणी सुनकर हम सब अत्यन्त प्रमुदित हुए। प्रमुदितहृदय से हमने आचार्यश्री से विनय की कि यह ग्रन्थ प्रकाशन हेतु हमें प्रदान कर दीजिए। **श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक न्यास दमोह** की ओर से इसका प्रकाशन करेंगे। यद्यपि अनेक बड़े नगरो के सम्पन्न-सज्जनों की ओर से "निजामृतपान" के प्रकाशन की प्रार्थनाएं आचार्यश्री के समक्ष प्रस्तुत हो चुकी थी। पुनरपि प्रकाशनार्थ उक्त कृति हमे प्रदान करने की स्वीकृति आचार्यश्री ने प्रदान की। कुछ ही दिनो मे हम, श्री भागचन्द्र इटोरया, सार्व० न्यास के अध्यक्ष श्री जयकुमार जी इटोरया एवं मन्त्री श्री वीरेन्द्र कुमार इटोरया, दमोह जैन पंचायत के मन्त्री लक्ष्मीचन्द्र जी सेठ, जैन प्रगतिशील परिषद के अध्यक्ष श्री बाबूलाल जी पलन्दी तथा हमारे अभिन्न मित्र श्री गुलाबचन्द्र जी असाटी आचार्यश्री की सेवा में पाण्डुलिपि प्राप्त करने के उद्देश्य से पहुंचे। आचार्यश्री के करकमलो के द्वारा पाण्डुलिपि प्राप्त कर हम सभी को जिस अपूर्व आनन्द की उपलब्धि हुई, उसकी अन्यजन केवल कल्पना कर सकते है।

आ० अमृतचन्द्र सूरि विरचित **'नाटक समयसार कलश"** के पद्यानुवाद के रूप मे रचित **आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज** की यह कृति प्रकाशित कर हम, हमारे सभी साथी तथा **श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक** न्यास और **जैन प्रगतिशील परिषद् के सदस्यगण** अत्यन्त गौरव की अनुभूति कर रहे है।

आचार्यश्री का शुभाशीष हमे सदा प्राप्त रहे और हम 'जिन शासन' की प्रभावना हेतु सदैव सचेष्ट रहें, यही भावना सदैव भाते है।

आभार प्रदर्शन :

"निजामृतपान" की पाण्डुलिपि प्राप्त कर उसकी प्रेस कापी तैयार करके "नाटक समयसार कलश" (मूल पद्यो) के साथ उसे जोडना निश्चित ही एक दुरूह और श्रमसाध्य कार्य था, इस कार्य को मनोयोगपूर्वक किया है श्री गुलाबचन्द्र जी असाटी ने। वस्तुत उनकी श्रम-साधना से हमारा कार्य अत्यधिक सुकर हो गया। **सम्पादन कार्य** मे सर्वश्री डॉ० प्रेम चन्द्र जी जैन (प्राध्यापक राजनीतिशास्त्र) दमोह, डॉ० कस्तूरचन्द्र जी 'सुमन' बांसा-तारखेड़ा तथा सुधीर सांधेलीय, श्री बाबूलाल जी पलदी, श्री लक्ष्मीचन्द्र जी सेठ, श्रीमती सरोज सांधेलीय आदि ने यथेष्ट सहयोग प्रदान किया है। अतः इन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना प्राथमिक दायित्व समझता हू।

इस ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशन हेतु निरन्तर सचेष्ट श्री **जयकुमार जी इटोरया साधुवाद के अधिकारी हैं** । वे श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक न्यास के अध्यक्ष हैं । ट्रस्ट के मंत्री श्री वीरेन्द्र कुमार इटोरया तथा न्यासी श्री निर्मलकुमार जी इटोरया की गहरी दिलचस्पी ने ट्रस्ट को अनेक लोकोपकारी कार्यों मे प्रवृत्त किया है । ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन किसी ट्रस्ट की ओर से होना बहुत प्रशंसनीय कार्य है । मैं ट्रस्ट के अध्यक्ष, मन्त्री तथा अन्य सभी न्यासियों को उनकी समझबूझ और कार्यशैली के लिए साधुवाद देकर अभिनंदन करता हूँ ।

मूल में यह कृति **जैनेन्द्र प्रेस** ललितपुर से प्रकाशित होना थी किन्तु समय की अल्पता और कार्य की अधिकता के कारण यह दिल्ली के **अंकित प्रिंटिंग प्रेस** से मुद्रित हुई है । यह भी ललितपुर की शाखा प्रेस है । मुद्रण कार्य तत्परता से सम्पन्न हुआ । अतः इसके संचालक **श्री प्रदीप भाई** को अनेकानेक धन्यवाद । इस अवसर पर पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित करा देने की योजना के प्रस्तोता चि० ऋषभ जैन (ललितपुर) को भूल पाना कम से कम मेरे लिए संभव नही है । उन्हें अनेक मंगल कामनाएँ ।

अन्त में भगवान् जिनेन्द्र देव एवं आ० विद्यासागर जी के प्रति बारंबार वन्दना करते हुए यह कृति सभी के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ । परमपूज्य आचार्यों की वाणी संत्रस्त मानवता का संरक्षण करे, इसी मनोभावना के साथ—

न्यास निदेशक तथा सम्पादक :

(डॉ० भागचन्द्र जैन "भागेन्दु")
अध्यक्ष-संस्कृत विभाग,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
दमोह (म० प्र०)

दमोह, म० प्र० ।
अक्षय तृतीया पर्व
वीर नि० सं० २५०५
दि० २९-४-७९ ई०

॥ णमो लोए सव्व साहूणं ॥

प्रकाशकीय

ज्ञान—रत्नाकर और विनम्रता की मूर्ति, परम तपस्वी **आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी** महाराज द्वारा रचित **"निजामृतपान"** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यधिक गौरव का अनुभव हो रहा है।

आचार्यश्री बीसवी शताब्दी के युगपुरुष महान्-दार्शनिक अनुपम सन्त है। आबाल-वृद्ध सभी की श्रद्धा के केन्द्र है। वे ऐसे वाग्मी है जो सदैव निजी समयसारमय सरस सत्ता का रसास्वादन करते है। महान् रत्नत्रय निधि की आराधना में एक साथ परम पुरुषार्थी, श्रमणत्व के प्रतिनिधि-प्रतिपादक लोकोपकारी आचार्यश्री के प्रति श्रद्धावनत हम उनके दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

● **श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक न्यास** अपनी प्रकाशन-शृंखला में **तृतीय पुष्प** के रूप में **आचार्य श्री की यह कृति** प्रकाशित कर श्रद्धाभिभूत **कृतकृत्य है**।

"निजामृतपान" का प्रकाशन इस न्यास के माध्यम से इतना सुकर नही होता यदि स्व० श्री भागचन्द्र जी इटोरया के घनिष्ठमित्र, सहकर्मी एव हमारे न्यास के सम्माननीय निदेशक **डॉ० भागचन्द्र जी जैन** "भागेन्दु" अध्यक्ष सस्कृत विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय दमोह का मार्गदर्शन एव सहयोग हमें नही मिलता। आदरणीय डॉ० सा० भाषा, साहित्य, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, एवं पुरातत्त्व के अधिकारी विद्वान् तो है ही; हमारे अत्यधिक आत्मीय भी है। आचार्यश्री से पाण्डुलिपि प्राप्त करने एवं उसे सुसम्पादित कर वर्तमान रूप देकर और महत्त्वपूर्ण प्राक्कथन लिखकर उन्होंने जो महनीय श्रम किया है तदर्थ यह न्यास डॉ० सा० का कृतज्ञ है। डॉ० सा० जैसे विद्वान् मनीषी के कुशल निर्देशन में यह न्यास अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता हुआ विविध लोकोपयोगी कार्यो के माध्यम से निज नूतन कीर्तिमान स्थापित करेगा। ऐसी आशा है।

● इस प्रकाशन के सन्दर्भ में हमें जिन **महानुभावों का सहयोग** प्राप्त हुआ है उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझते है। ऐसे सज्जनों में जैन प्रगतिशील परिषद् के अध्यक्ष श्री बाबूलाल जी पलदी, दमोह जैन पंचायत एवं जैन प्रगतिशील परिषद् के मंत्री श्री लक्ष्मीचन्द्र सेठ, श्रीमती सरोज सांधेलीय, श्री गुलाबचन्द्र जी अंसाटी,

श्री सुनील कुमार जैन तथा डॉ० ज्ञानचन्द्र चौधरी आदि के नाम प्रथमपंक्ति में समाविष्ट हैं। अतः ज्ञात-अज्ञात सभी सहयोगियों के प्रति आभारी हूँ।

मुद्रण कार्य में अंकित प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली के संचालक श्री प्रदीप जैन एवं ललितपुर के ऋषभ जैन ने जिस अभिरुचि एवं तत्परता से कार्य किया है, यह न्यास उन्हें अनेकशः धन्यवाद प्रदान करता है।

● हमें विश्वास है कि इस न्यास द्वारा प्रकाशित यह अनुपम ग्रन्थ "निजामृतपान" भौतिकवाद के चाकचिक्य (चकाचौंध) में उलझे वर्तमान विश्व को स्व-पर-विभेदक वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करेगा।

इन्हीं शुभ कामनाओं के साथ.

सविनय—

अक्षय तृतीया पर्व
वीर नि० स० २५०५
दि० २९-४-७९ ई०

जयकुमार इटोरया,
अध्यक्ष,
श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक न्यास
दमोह (म० प्र०)

इस ग्रन्थ की प्रकाशिनी संस्था का परिचय

आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी द्वारा रचित **'निजामृतपान'** नामक यह **ग्रन्थ श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक न्यास दमोह** (म० प्र०) की ओर से तृतीय पुष्प के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक न्यास की संस्थापना **स्व० श्री भागचन्द्र जी इटोरया** की पवित्र स्मृति मे दिनांक **१४ जनवरी सन् २१७५ को हुई।**

जीवन परिचय :

स्व० श्री इटोरया जी का जीवन सम्पूर्ण जैन समाज के विगत छह दशाब्दियों (६० वर्ष) के उत्थान-पतन, सघर्षो, आन्दोलनो, मनोवृत्तियों, साधु सस्थाओ तथा विद्वत् समागमों का जीता जागता इतिहास है। वे समाज के लिये जिये, समाज के लिये मरे और मरणोपरान्त भी समाज को जीवन, गति तथा दिशा-बोध के लिये बहुत कुछ कर गये।



स्व० श्री भागचन्द इटोरया

आज से ६६ वर्ष पूर्व—**५ जनवरी १६१३ को दमोह** नगर मे एक निम्न मध्यम वर्गीय परिवार मे स्व० श्री मूलचन्द इटोरया के यहा जन्मे बालक ने अपनी अन्तिम श्वांस **१४ जनवरी १६७५ ई०** को तोड़कर पार्थिव शरीर को विदा दी। इस बालक का नामकरण **भागचन्द्र** करते समय यह कौन जानता था कि यह बालक वस्तुतः सम्पूर्ण अर्थों में अपने नाम को सार्थक करेगा! अपने अनथक पुरुषार्थ, लगन, ईमानदारी, निरतर जागरुकता एवं सच्चरित्रता के बल पर दुर्भाग्य के अनेक प्रसंगों को सौभाग्य मे परिवर्तित कर देगा। जिन्दादिली, शोषित एवं पीड़ित वर्ग के प्रति आत्मीयता, विपरीत परिस्थितियों के समक्ष समर्पण नही करना तथा खिलाड़ी की भावना से जिन्दगी के उतार चढ़ावो में समरसता और अदम्य साहस जैसे गुण उन्हें विरासत मे मिले थे। जैनत्व और जैन संस्कृति उनके रोम-रोम में समायी थी।

तीन वर्ष की अल्पायु से संघर्षों की जो शृंखला प्रारम्भ हुई उसमे आगामी ६० वर्षों में रूप तो अवश्य अनेक बदले, परन्तु उनका क्रम भंग नही हुआ। हर संघर्ष उनके व्यक्तित्व को निरन्तर निखारता गया, उन्हें ताजगी देता रहा, उनमें नये-नये संघर्षों से मुकाबला करने की क्षमता प्रदान करता गया।

पुरुषार्थी भागचन्द्र ने श्रम और सदाचरण को सदैव प्राथमिकता दी। पान की पेटी से जिसने आजीविका का साधन आरम्भ किया, जीवन के विविध सोपानों मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष

कर वही अनेक बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों का संचालक बना । **दान और दया की वृत्ति सदैव सर्वोपरि रही । राष्ट्र एवं समाज की सेवा करने तथा पाखण्ड और कुरूढ़ियों के उन्मूलन की प्रखरभावना सदैव पल्लवित पुष्पित होती रही ।**

उनके व्यक्तित्व के विकास में महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र बोस, श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज, ब्र० शीतल प्रसाद जी, बैरिस्टर चम्पतराय जी, पं० परमेष्ठीदास जी न्यायतीर्थ, पं० बंशीधर जी व्याकरणाचार्य आदि का निकट सम्पर्क और प्रभाव स्पष्ट प्रतिबिम्बित हुआ ।

स्व० श्री इटोरया जी ने अनेक संस्थाओ के माध्यम से बाल विवाह, वृद्ध विवाह अनमेल विवाह, उपजातियो में भेदभाव, मरण भोज, बाह्याडम्बर और बहुव्यय साध्य प्रदर्शनों आदि समाज तथा राष्ट्र मे व्याप्त कुरूढ़ियों के उन्मूलन के लिये भरपूर आन्दोलन चलाये । वे उपासकों की सख्या बढ़ाने के पक्षधर थे । अनावश्यक मंदिरो और मूर्तियो के निर्माण का उन्होंने आजीवन विरोध किया । विद्यालयों की कमी की ओर समाज का ध्यान सदैव आकर्षित किया । वे समाज की उस नासमझी पर क्षुब्ध थे जो अपने बच्चो को अशिक्षित ही छोड़कर गजरथ जैसे खर्चीले आयोजनो पर धन का अपव्यय करती हैं । **वे गजरथ की तुलना मे विद्यारथ के पक्षपाती थे ।** अनेक शिक्षा संस्थाएं, तीर्थक्षेत्र, प्रकाशन संस्थाएँ और जरूरतमन्द समाज उनके योगदान से समुन्नत हुए ।

वे **विराट मानवता की सेवा को ही सच्चा धर्म** मानते थे । **धर्म, धार्मिकजन एवं धर्मायतनों की रक्षा** एव **सत्साहित्य का प्रकाशन और वितरण** करना-कराना अपना प्राथमिक दायित्व मानते थे । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उच्च नैतिक मूल्य प्रतिष्ठित करना उनका जीवन था । वे भीतरी और बाहरी पवित्रता में विश्वास रखते थे । उनमे अद्भुत वाक्यटुता थी और अकाट्यतर्क प्रस्तुत करते थे । उन्होने निरन्तर कठिन श्रम, ईमानदारी, उच्च आदर्श एवं क्रान्तिकारी प्रगतिशीलता के मार्ग को सदैव स्वीकार किया । ऐसा अनुभव होता है कि वे व्यक्ति नही सस्था थे । प्रसन्नता है कि उनके परिवारजनो में भी वैसी ही प्रवृत्तियां प्राप्त होती हैं ।

स्व० श्री भागचन्द्र जी इटोरया के **देहावसान पर** श्मशान भूमि मे ही सहस्रों सम्भ्रान्त नागरिको की उपस्थिति मे इटोरया--परिवार के वरिष्ठ सदस्य **श्री जयकुमारजी इटोरया** ने स्व० इटोरया जी की गतिविधियो और प्रवृत्तियो को यथावत् निरन्तर रखने तथा शाश्वत् मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु एक न्यास की स्थापना की घोषणा की थी । वह घोषणा तुरन्त साकार हुई । न्यास स्थापित हुआ, रजिस्टर्ड हुआ और लोक कल्याणकारी विभिन्न गतिविधियों में संलग्न है ।

अब तक इस न्यास ने निम्न प्रकार की गतिविधियां सम्पन्न की है—

छात्र वृत्तियों, शोध वृत्तियों तथा शोध ऋणों का वितरण,

विभिन्न प्रतिभाओं को प्रोत्साहन, उनका सम्मान, पदक तथा वैजयन्ती (शील्ड) प्रदान करना, नेत्र शिविरों मे चश्मे तथा दवाओ का वितरण, बाढ़, तूफान आदि प्राकृतिक विपदाओं पर सहायता, पुरातन मन्दिरो की सुरक्षा और तीर्थ क्षेत्रों के विकास—समुन्नयन हेतु सहयोग, सत्साहित्य का वितरण तथा प्रकाशन, जरूरतमन्द व्यक्तियों को वस्त्र, पुस्तक, औषधि का दान, विद्यालयो को आहारदान तथा अनेक शिक्षाप्रद भव्य समारोहो का आयोजन आदि ।

इस न्यास की संचालन समिति इस प्रकार है—

अध्यक्ष : श्री जयकुमार इटोरया

मंत्री : श्री वीरेन्द्र कुमार इटोरया

निदेशक : डॉ० भागचन्द्र जैन "भागेन्दु"

कार्यकारिणी सदस्य—सर्वश्री प्रेमचन्द्र इटोरया,
श्री विजय कुमार इटोरया, एव
श्री निर्मल कुमार इटोरया।

● हमारी मनोकामना है कि यह ट्रस्ट इसी प्रकार गतिशील रहकर श्रमण-संस्कृति तथा मानवता की सच्ची सेवा करे।

● **इस न्यास के कार्य तथा कार्य शैली अन्यों के लिए प्रेरणा स्रोत बने; ऐसी भावना है।**

● 'निजामृतपान' के प्रकाशन तथा सार्वजनिक प्रवृत्तियों के संचालन के लिये न्यास को अनेकानेक धन्यवाद।*

—सरोज सांधेलीय

* इस आलेख के प्रणायन में डॉ० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' द्वारा लिखित पुस्तक "श्री भागचन्द्र इटोरया . एक प्रेरक व्यक्तित्व" से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। तदर्थ लेखक आभारी है।

करती है। विरोध में बोध कहाँ ? बोध बिना शोध कहाँ ? विरोध तो अज्ञान का प्रतीक, अन्धकार !! ओ ! नयन-गवाक्षों-से फूटती हुई, अबाधित ज्योति किरण मेरी ओर चाँदी की पतली धार सी आ रही है। सानन्द आसीन है, सत्तागत अनन्तानुबन्धी-सर्प !! कंदर्प-दर्प से पूरा भरा है। ज्ञान ज्ञेय का सहज सम्बन्ध हुआ। शुद्ध-सुधा और विष का संगम हुआ। यह ज्ञान के लिए अपूर्व अवसर है। ज्ञान न तो दुखित हुआ न सुखित हुआ। किन्तु यह सहज विदित हुआ, कि ध्यान ध्येय-सम्बन्ध से भी ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है। पूर्ण है। सहज है। कोई तनाव नहीं इसमें केवल स्वभाव है भावित भाव है। ध्येय एक होता है जब ध्यान में ध्येय उतरता है तब ज्ञान संकीर्ण होता है। ससीम होता है। संकुचित-ज्ञान अनंत का मुख छू नहीं सकता। अतः ज्ञान प्रवाहित होता हुआ, अनाहत बहता हुआ जा रहा है। सहज अपनी स्वाभाविक गति से। अद्भुत है। अननुभूत है विकार नही निर्विकार है, तप्त नहीं, क्लान्त नहीं, तृप्त है, शान्त है। जिसमें नहीं ध्वान्त है। जीवित है जागृत भी नितान्त है, अपने में विश्रान्त है। यह विभूति ! अविकल अनुभूति !

ऐसी ज्ञान की शुद्ध-परिणति का ही यह परिपाक है, कि उपयोग का द्वितीय पहलू, दर्शन ने अपना चमत्कार का परिचय देना प्रारम्भ किया है। अब भेद पतझड़ होता हुआ जा रहा है। अभेद की बसन्त क्रीड़ा प्रारम्भ। द्वैत के स्थान पर अद्वैत उग आया है। विकल्प मिटा, अविकल्प उठा। आर पार हुआ, तदाकार हुआ, निराकार हुआ, समयसार हुआ, वह मैं ! "मैं" मे सब, सबमे मै प्रकाश मे प्रकाश का अवतरण, विकाश में विनाश उत्सर्गित होता हुआ, सम्मिलित होता हुआ, सत् साकार हो उठा, आकार मे निराकार हो उठा। इस प्रकार उपयोग की लम्बी यात्रा "मत् त्वत् और तत् को चीरती हुई, पार करती हुई, आज !!! सत् मे विश्रान्त है। पूर्ण काम है। अभिराम है। हम नही, तुम नहीं, यह नही, वह नही, मैं नहीं, तू नहीं। सब घटा, सब पिटा, सब मिटा, केवल उपस्थित सत् ! सत् ! सत् ! सत् ! सत् है ! है ! है ! है !

ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने के लिए भगवत् कुन्द कुन्द आचार्य कृत समयसार, पथ एवं पाथेय का कार्य करता है। इसका आश्रय लेकर ही सत्-पथ-पथिक, ध्रुव-बिन्दु की ओर गम-मान होता हुआ, समुचित समय पर कृत्य-कृत्य हो जाता है, सत्य तथ्य पाता है। ऐसे अपूर्व ग्रन्थराज समयसार के ऊपर, सर्वप्रथम अमृतचन्द्र सूरिजी ने आत्म-ख्याति-नामक बृहत् संस्कृत टीका का आविर्भाव किया। जो अपने-आपमे एक अनुपम निधि है। मैने जब इसका अवलोकन किया, तब भाषा की गहनता का पूर्ण परिचय मिला। और साथ साथ अनुपम पदलालित्य ने मन को मोहित किया। इसी पदलालित्य ने इस कृति का बार बार अवलोकन कराया। फलस्वरूप विषय विदित हुआ, अवगत हुआ, आत्म से सहज संगम हुआ।

सयमसार — नाटक-समयसार

हम भाषा के माध्यम से, मन में उठते हुए विचारों को दूसरों तक सहज एवं स्पष्ट रूपेण भेज सकते हैं। इसी प्रकार ग्रन्थ के गूढ़तम विषयों को, टीकाओं, भाष्यों एवं अनुवादों के माध्यम से अवगत करा सकते है। किन्तु भाव स्पष्ट करने की पद्धति भिन्न-भिन्न हो



चेतना की गहराई में

परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री १०८ ज्ञानसागर जी के पुनीत सानिध्य में, पूज्य जयसेनाचार्यकृत सुगम-सरस-समरस-पूरित-तात्पर्य वृत्ति के माध्यम से, ग्रन्थराज समय-सार का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तदुपरान्त पूज्य-अमृतचन्द्र सूरिकृत आत्म-ख्याति को देखने की मन मे अभिरुचि हुई। गुरु महाराज श्री के चरणो में सविनय भावना अभिव्यक्त की। उदार हृदय वाले, करुणा से ओत-प्रोत, वात्सल्य की साकार मूर्ति गो-माता जैसे बछड़े को स्तन पिलाती है, वैसे ही गुरुवर ने मुझे इस अपूर्व अध्यात्मरस से परिपूरित, सहज शान्त सुख का निधान, आत्म-ख्याति टीका का रसास्वादन कराया! फलस्वरूप आत्म-ख्याति आत्म-सात हुई। चेतना की लीला ज्ञात हुई। तप्त था, तृप्त हुआ, क्लान्त था, शान्त हुआ, मेरा आतमा तुष्ट हुआ, पुष्ट संपुष्ट हुआ। निरन्तर अभय की अनुभूति के साथ निराबाध! यत्र-तत्र-सर्वत्र स्वतंत्र यात्रा कर रहा हूँ। एकाकी यात्री!

स्वयं को अवगाहित कर रहा हूँ। अतल, अगम सत् चेतना की गहराव में, मस्तक के बलपर, दोनो हाथो से, नीचे के नीर को, चीरता हुआ, चीरता हुआ, ऊपर की ओर फेंकता हुआ, फेंकता हुआ, जा रहा हूँ, आर-पार होने जा रहा हूँ! अपार की यात्रा करने जा रहा हूँ। पथ मे कोई आपत्ति नही है, आपत्ति की सामग्री अवश्य, ऊपर नीचे, आगे पीछे बिछी है किन्तु अभी कोई ओर-छोर दृष्टि में नही आ रही है। शोर भी तो नहीं!! चारों ओर मौन का साम्राज्य! विस्तृत-वितान! बस! सब कुछ स्वतंत्र अपनी अपनी सत्ता को संजोए हुए सहज-सलील समुपस्थित! परस्पर में किसी प्रकार की टकराव नही, लगाव के भाव नही, अपनी अपनी ठहराव में। अपने अपने संवेदन। अपने अपने भाव। परसे भिन्न, अपने से अभिन्न!

निरभ्र-आकाश मण्डल में उडुगण की भाँति ज्ञानादि उज्ज्वल उज्ज्वल गुण-मणियाँ अवभासित हैं, अवलोकित है। आलोक का परिणमन यहाँ घनीभूत प्रतीत होता है। लो यहीं पर मिथ्यात्वरूपी मगर-मच्छ से भी साक्षात् कार!! किन्तु उधर से आक्रमण नहीं, कटाक्ष नहीं, संघर्ष के लिए कोई आमन्त्रण भी नहीं। अनंतकारों से निष्पन्न उसका शरीर है। कठोरता का शुद्ध परिणमन; कठोरता की यह चरम सीमा है पर! मृदुता का विरोध नहीं

सकती है। कोई लेखक गद्य के, कोई पद्य के कोई उभय-नाटक (चम्पू) के माध्यम से ग्रन्थ के आशय को उद्घाटित करते हैं।

प्रासंगिक समयसार पर लिखी गई, आत्म-ख्याति टीका भी नाटक-पद्धति का अनुकरण करती है। जो विश्व का प्रथम संस्कृत नाटक काव्य, माना जा सकता है। अतः इस नाटक काव्य के अंतर्गत आई हुई २२८ भिन्न-भिन्न कारिकाओं का (काव्यों का) पृथक् रूपेण संकलन कर ग्रन्थ का रूप देना नाटक-काव्य-प्रणाली को समाप्त-लुप्त करना है। जो इष्ट नहीं है। तथापि हमने इन कारिकाओं का पृथक् जो पद्यानुवाद किया है, उसका कारण भिन्न है। उसका स्पष्टीकरण यहीं आगे करेंगे।

आचार्य कुन्द-कुन्द की तीन रचनाएं बहुत प्रौढ़ मानी जाती हैं। एक प्रवचनसार, दूसरा पंचास्तिकाय, तीसरा समयसार। इन्ही तीन रचनाओं पर पूज्य अमृतचन्द्र सूरिजी ने विषद संस्कृत टीकाएँ लिखी हैं। जो भाषा की दृष्टि से बहुत क्लिष्ट बन पड़ी हैं, और शब्दान्वयी नहीं होने से प्रत्येक पाठक की, मूल तक गति नही हो पाती। किन्तु इन्हीं समय-सार आदि पर, पूज्य जयसेन आचार्यकृत टीकाएँ, जो शब्दान्वयी है, उपलब्ध होती हैं। अतः सुगम सरस होने से मूल ग्रन्थो की कली-कली खोलती हैं। कुन्द-कुन्द से परिचय कराती हैं। किन्तु एक विशेष ध्यान देने की बात यह है, कि, इन उभय टीकाओं में मूल गाथाओं की संख्या समान नहीं मिलती ! पूज्य आ० अमृतचन्द्र की टीकाओं में कम और आचार्य वर्य जयसेन जी की टीकाओ में अधिक। (बहुत कुछ विचार करने के उपरान्त भी रहस्य खुल नहीं रहा था) किन्तु जब प्रवचन-सार की चूलिका का अवलोकन कर रहा था, उस समय एक विशेष प्रसग पर ध्यान गया, वह प्रसंग है "स्त्री-मुक्ति निषेध का"। वहाँ पर एक साथ १०-१२ गाथाएं छूटी है जिन पर आ० अमृतचन्द्र सूरिजी की टीका उपलब्ध नहीं होती। जब कि उन सब प्रासंगिक गाथाओं की टीका आ० जयसेन जी ने लिखी है। ज्ञात होता है कि, आ० अमृतचन्द्र जी को स्त्री मुक्ति निषेध का प्रसंग इष्ट प्रतीत नहीं होता। आगे जाकर उभय टीकाओं की समाप्ति पर क्रमशः दो प्रशस्तियाँ भी मिलती हैं। अमृतचन्द्र सूरिकृत टीका सम्बन्धी जो प्रशस्ति लिखी गई है, उसकी काष्टा संघ की परम्परा का ज्ञान कराया गया है, और जयसेन आचार्यकृत टीका की प्रशस्ति में मूल-संघ की परंपरा का ज्ञान कराते हुए, आ० श्री जयसेन जी को मूल संघ के अंतर्गत माना गया है। इस प्रकार उभय प्रशस्तियो से ज्ञात होता है, कि श्री जयसेन आचार्य जी मूल संघ के और अमृतचन्द्र सूरिजी काष्ठा संघ के सिद्ध होते हैं। टीकागत गाथाएँ कम बढ़ क्यो ? इस विषय की गवेषणा ने मुझे संघ का निर्णय कराया। इससे एक नवीन विषय उपलब्ध हुआ।

मनोगत भावों को भाषा का रूप देना तो कठिन है ही, उन्हें लेखबद्ध करना उससे भी कठिन है। किन्तु भाषा को काव्य के साँचे में ढालना तो कठिन से कठिनतर कार्य है। प्रत्येक लेखकों में काव्य-कला प्राप्त नहीं होती। काव्य-कला-निष्णान्त-लेखनी से, काव्य के नियमों का उल्लंघन किये बिना, भाषा एक विशेष लय में डूबती जाती है। और वहीं काव्य बनता है। श्रव्य बनता है। सामान्यतः पद्यात्मक रचना को ही काव्य यह संज्ञा प्राप्त है। किन्तु काव्य का यह सही लक्षण नहीं है। कवेः कृतिः काव्यम्। कवि की प्रत्येक कृतियाँ काव्य हैं। चाहे गद्य हो, चाहे पद्य, वह काव्य है। जिससे पर्याप्त-मात्रा में लय-ध्वनियां फूटती हों। आत्म-ख्याति भी एक अनुपम काव्य है। जो अध्यात्म रस से भरपूर है।

इस काव्य में, नाटक की पद्धति होने से, प्रत्येक अधिकार में कुछ पद्य-काव्य भी हैं। जो काव्य-रसिक-पाठक के चंचल मन को अविचल बनाते हैं, और अध्यात्म की गहराइयों में सहज ही ले जाते हैं। उन पद्य काव्यों की संख्या २८८ हैं। इन्हीं का संकलन आज वर्तमान में कलशा के नाम से ख्याति प्राप्त है। किन्तु ये काव्य भिन्न-भिन्न छन्दों-बन्धनों से अलंकृत हैं। कहीं अनुष्टुप/आर्या, द्रुतविलंबित आदि छन्द हैं, तो कहीं मन्दाक्रान्ता शार्दूल, शिखरिणी, बसंततिलका, स्रग्धरा, मालिनी आदि छन्द है। इससे यह भी ज्ञात होता है, कि आचार्य श्री को केवल छन्द शास्त्र का ही ज्ञान नहीं, अपितु उन पर पूर्ण अधिकार भी है।

लयात्मक काव्य का (अनुकान्त) आविष्कार

कुछ दिनों तक इस कलशा का प्रतिदिन पाठ भी किया करता था। फलस्वरूप कुछ काव्य कण्ठस्थ भी हुए थे। किन्तु १८८वाँ काव्य, जिसमें यद्यपि लय की धारा प्रवाहित है, कण्ठस्थ होना तो दूर रहा, किन्तु कण्ठ को ही पकड़ने लगा, लगा मुझे, इस काव्य में अवश्य दोष है। या मुझे इस छन्द का ज्ञान नहीं है। प्रचलित सभी छन्द शास्त्रों को छाना। किन्तु जाना नहीं गया, कि यह कौन-सा छन्द है। तब भिन्न-भिन्न संस्थाओं से प्रकाशित समयसार का एवं कलशा का अवलोकन करना प्रारम्भ किया। किन्तु कुछ भी हाथ नही लगा। एक दिन निर्णयसागर मुद्रणालय से मुद्रित-प्रथम गुच्छक का अवलोकन कर रहा था। तब प्रासंगिक काव्य को संख्या-क्रम में तो स्थान मिला था, परन्तु इस काव्य के सम्मुख-प्रश्नार्थक चिह्न अवश्य लगा था। तब लगा कि इस काव्य में कुछ-ना-कुछ रहस्य अवश्य है। इसी वर्षायोग की बात है, सिद्ध क्षेत्र-नयनागिरि पर, डा० पन्नालाल साहित्याचार्य जी से भी इस काव्य के सम्बन्ध में चर्चा हुई। आपने भी यही कहा, कि आज तक इसके सम्बन्ध में कुछ निर्णय नहीं हुआ, कि यह गद्य है या पद्य, और कुछ ऐसे ही प्रकरण हरिवंश आदि पुराणों में भी उपलब्ध होते है। पंडित जी के विचार-सुनकर और भी अभिरुचि बढ गई, कि, इस काव्य के सम्बन्ध में सही-सही निर्णय लेना ही होगा। अतः इस ओर अविरल-चिन्तन की धारा चलती ही रही। उसी का यह सुफल मानता हूँ कि आकस्मिक, गत तीन चार वर्ष पूर्व की बात स्मृति में उतर आई। वह थी, "निराला" की अनाभिका और तार-सप्तक संकलित एवं संपादित अज्ञेय की। इन कृतियों में भी भाषा न तो गद्य में ढली है, और न तो छन्दोबद्ध-पद्य में, सब बन्धनो से मुक्ति, स्वतन्त्र। किन्तु भाषा में उच्छृङ्खलता, स्वच्छन्दता नहीं, एक लयबद्ध-धारा में भाषा अपनी सहज गति से प्रवाहित है। यद्यपि सर्व-प्रथम इन कृतियों का हिन्दी साहित्य क्षेत्र में समादर नहीं हुआ, तथापि नूतन-आविष्कार होने से दिनों दिन, लोकप्रियता बढ़ती गई। और ये कृतियाँ विशेष सम्मानित है इसीलिए निराला आदि कवियों को हिन्दी कवि-जगत् लयात्मक (रबड़) नूतन काव्यों के आविष्कर्त्ता स्वीकार करता है।

इससे यह पूर्ण निर्णय होता है, कि प्रासंगिक कलशा का काव्य भी सदोष नहीं किन्तु निर्दोष, एक लयात्मक काव्य है। जो हिन्दी लयात्मक काव्यों की अपेक्षा प्राचीनतम है। ऐसी स्थिति में आ. पूज्य अमृतचन्द्रजी भी संस्कृत लयात्मक काव्य के आविष्कर्त्ता हैं। अतः

केवल जैन समाज के लिए ही नहीं अपितु दिगम्बर साधुओं के लिए भी यह गौरव का विषय है।

ज्ञान आत्मा का एक अनन्य गुण है। वह आत्मा से किसी भी तरह कभी पृथक् हो नहीं सकता। उसका कार्य केवल ज्ञेय-भूत-पदार्थों को जानना। ज्ञेय-भूत-पदार्थ स्व भी हो सकता है पर भी। किन्तु समयसार में, आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए, ज्ञान और तद्वान ज्ञानी की स्तुति की गई है। वह ज्ञान सामान्यतः तीन प्रकार का है। शब्द ज्ञान, अर्थ ज्ञान और ज्ञानानुभूति। जैसा कि "आत्मा" इस शब्द का स्वर व्यंजन के साथ ज्ञान होना, शब्द ज्ञान है—अर्थात् इस ज्ञान के साथ अर्थ-ज्ञान और ज्ञानानुभूति का सम्बन्ध नहीं रहता। केवल तोते के समान "आत्मा" आत्मा रटना होता है। इस ज्ञान के उपरान्त, अर्थ ज्ञान होता है। जो पदार्थ के स्वरूप, लक्षण, गुणधर्म के सम्बन्ध में परोक्षरूप ज्ञान कराता है। जैसा कि आत्मा, अमूर्त है ज्ञान-दर्शन स्वभाव वाला है इत्यादि। इन दोनों ज्ञानों के साथ आत्म-पदार्थ-सम्बन्धी यथार्थ श्रद्धान तो हो सकता है, किन्तु तदनुभूति का कोई नियम नहीं है। हाँ। प्राप्त श्रद्धान के बलपर ही, उसकी यात्रा ज्ञानानुभूति लिए होगी। ऐसी ज्ञानानुभूति, जब तक परिग्रह एवं प्रमाद-दशा रहेगी तब तक केवल ग्रहस्थ को ही नहीं अपितु दिगम्बर मुनियों के लिए भी प्राप्त नहीं होगी। परिग्रह-वान् को भी यदि ज्ञानानुभूति (आत्मानुभूति) का लाभ हो जाये तो कैवल्य की प्राप्ति भी होनी चाहिए, क्योंकि कैवल्य का कारण ही ज्ञानानुभूति है। अतः ग्रहस्थ दशा में ज्ञानानुभूति मानना कैवल्य ज्ञान को प्रकारान्तर से उसी दशा में मानना है। जो महान दोष है एवं सिद्धान्त विरुद्ध।

तथापि संप्रति ऐसे भी अध्यात्म प्रेमी बन्धु हैं, जो शब्द-ज्ञान एवं अर्थ-ज्ञान भर को ज्ञानानुभूति-आत्मानुभव मानकर विषय वासना में आपाद कण्ठ डूबे हैं और बताते हैं कि विषय-वासना तो चारित्र-मोहनीय का परिणाम है। हम तो ज्ञान में व्यस्त हैं। मस्त हैं। एकान्त से उनका भी यह कहना दोषपूर्ण नहीं है, क्योंकि समयसार ही एक ऐसा ग्रन्थ है, जो अच्छे-अच्छे विद्वान भी उसके सही-सही अर्थ से भावसे वंचित रह जाते हैं। आज से वर्षों पूर्व की बात है कि समय का गहन अध्ययन करते हुए भी पं० कविवर बनारसीदासजी बिना-रस के ही रहे थे। उन्हीं के शब्दों में देखिए—

करनी को तो रस मिटो आयो न निजका स्वाद
भई बनारसी की दशा जैसो ऊँट को पाद॥

समयसार, समयसार कलश आदि इन ग्रन्थों में, सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का कारण इत्यादि प्रयोगों का वाहुल्य है। अतः पाठक सहज ही यह निर्णय ले लेता है कि, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान ग्रहस्थावस्था में भी सम्भव है। अतः पूर्वकृत-कर्मों की निर्जरा होगी ही। भोग भले, भोगते रहो, उससे कुछ होने वाला नहीं है इत्यादि। इससे विदित होता है कि पं० बनारसी परंपरा अभी अबाधित चल रही है। किन्तु बुद्धिमानों को यह विचार करना चाहिए कि भोग निर्जरा का कारण हो, तो बन्ध कारण क्या होगा? और "सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का कारण है" तो कौन से सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का कारण है? क्योंकि सुभोपयोग में आया हुआ सम्यग्दृष्टि, जब देव गुरु आदि आराध्यों की आरा-

बना करता है, तब उसका भी उपयोग बन्ध का कारण है, ऐसा आगम में उल्लेख मिलता है। बात यह है कि सम्यग्दृष्टि मुनि या श्रावक के पूजन आदि आवश्यक तो बन्ध का कारण और सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का कारण, यह किस दशा में ?

बन्धुओं ! इन समयसारादि अध्यात्म ग्रन्थों में वीतराग सम्यग्दृष्टि को ही ग्रहण किया है। और वीतराग चारित्र के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखने वाला वीतराग विज्ञान ज्ञानानुभूति या आत्मानुभव स्वीकार किया है। अत: ये रत्नत्रय की निधियाँ अपरिग्रही नि:संग दिगम्बर मुनियों में ही उपलब्ध हो सकते हैं। और उनका जो पूर्व कर्म के उदय से अनिच्छापूर्वक पंचेद्रिय विषयों का भोग, भोगना होता है वह निर्जरा का कारण होता है। किन्तु राग पूर्वक भोग तो केवल बन्ध का ही कारण है।

अत: गृहस्थ दशा में राग के साथ भोगानुभूति तो सम्भव है। किन्तु ज्ञानानुभूति, उपयोगानुभूति तो त्रिकाल असम्भव। हाँ ज्ञानानुभूति या आत्मानुभूति ही उपादेय है, ऐसी भावना वह गृहस्थ सराग सम्यग्दृष्टि संध्याकालीन सामायिकों मे भा सकता है। कर सकता है। करता ही है। किन्तु भावना और अनुभूति इन दोनों में उतना ही अन्तर है, जितना अन्तर जल के चिन्तन में और जलपान में। अस्तु !

इसी विषय को पुष्ट एवं स्पष्ट करने वाला प्रसंग कलशा का अनुवाद देखिए—

ज्ञान[1] बिना, रट निश्चय, निश्चय निश्चयवादी भी डूबे,
क्रिया-कलापी भी डूबे, डूबे संयम से ऊबे।
प्रमत्त बन के कर्म न करते अकम्प, निश्चल शैल रहें,
आत्म-ध्यान में लीन किन्तु मुनि, तीन-लोक पे तैर रहे॥१११॥

वीतराग-विज्ञान को स्वीकार किए बिना, विषय-कषाय रूपी दल-दल में फँसे हुए, अपने आपको ज्ञानी मानने वाले, दम्भी, निश्चय-वादी, केवल निश्चय की दिन-रात रट लगाते-लगाते डूब गये अर्थात् संसार समुद्र को पार नहीं कर पाये। उसी प्रकार वीतराग-विज्ञान की भूमिका का निर्वाह करने वाला दिगम्बरत्व को स्वीकार करते हुए भी कुछ ऐसे मुनि, जो मात्र बाह्य-क्रिया-काण्ड में दिन-रात लीन है, वे भी भव-कूल-किनारा नहीं पाये। डूब गये। और संयम से भयभीत होने वाले भी संसार-सागर में डूब गये। किन्तु ख्याति-पूजा-लाभादिक की वाँछा नहीं रखने वाले, सभी प्रकार के प्रमादों से दूर, अप्रमत्तदशा का अनुभव करते हुए निर्विकल्प-समाधि में लीन, पर्वत के समान निश्चल, आत्मानुभूति के बलपर वीतरागी-ज्ञानी मुनिराज तैर रहे हैं वे संसार-सागर में अब डूब नहीं सकते।

ऐसे ही अनेक प्रसंग शुभ-चन्द्राचार्यकृत ज्ञानार्णव में भी उपलब्ध होते हैं। यथा—

रत्नत्रयमनासाद्य यः साक्षाद्ध्यातुमिच्छति।
खपुष्पैः कुरुते मूढः स वन्ध्यासुतशेखरम् ॥ सम्यग्दर्शन ॥४॥

1. कलशा काव्य संख्या १११

आकाश के फूलों से वन्ध्या के पुत्र के लिए सेहरा (मुकुट) बनाने का प्रयास करने वाला जैसा मूर्ख माना जाता है; वैसा ही रत्नत्रय अर्थात् महाव्रत को स्वीकार किए बिना जो आत्म-ध्यान की इच्छा करता है वह मूर्ख माना जाता है। पुनश्च

अनिविध्याक्षसंदोहं यः साक्षात् मोक्तुमिच्छति
विदारयति दुर्बुद्धिः स शिरसा महीधरम् ॥ इंद्रियमन प्र. ३१ ॥

इन्द्रिय-दमन किए बिना, जो व्यक्ति मोक्ष-ध्यान के फल को प्राप्त करने में उद्यत हुआ है वह उसी तरह हास्य का पात्र है जिस तरह कोई मूढ़-मति-हीन, मस्तक के बल पर पर्वत को फोड़ने में रत है। यह निश्चित है कि पर्वत के बदले में उसका मस्तक ही फूटेगा।

अतः वीतराग स्वसंवेदन, वीतरागसम्यग्दर्शन, वीतराग चारित्र शुद्धोपयोग, स्वरूपाचरण चारित्र, शुद्धज्ञान चेतना, शुद्धात्मानुभूति, निर्विकल्पसमाधि, आत्म-ध्यान आदि, इन अपूर्व निधियों का अधिकारी—स्वामी कौन हो सकता है यह गूढ़-रहस्य उद्घाटित हो, इसी भावना से कलशा पृथक्‌रूपेण भावानुवाद (पद्यानुवाद) किया है। किन्तु अब अनुभव कर रहा हूँ कि इन विषयों को और स्पष्ट करने हेतु कलशा पर, भले ही छोटा हो, परन्तु भाष्य नितान्त आवश्यक है ! देखो !! समय पर !!! सम्भावना है !

प्रेरणा

सर्वसेवा संघ, वाराणसी से प्रकाशित समणसुत्तम् का पद्यानुवाद जैन गीता के नाम से जो किया है, उसकी पूर्वार्द्ध की पांडुलिपी सतना में पूर्ण की। उसे देखकर स्थानीय धर्म-प्रेमी श्रीधीमान् कवि नीरज जी ने कहा कि जैनगीता को पूर्ण करने के उपरान्त हिन्दी के प्रचलित छन्द में कलशा का पद्यानुवाद हो तो एक नई चीज हम लोगों को उपलब्ध होगी। उत्तर में मैंने और कुछ नहीं कहा देखो !! समय पर जो बन जाये !! अभी तो जैनगीता पूर्ण करना है।

उसी समुचित-प्रेरणा का यह सुफल है, कि जैनगीता को सिद्ध-क्षेत्र-कुण्डलगिरि पर पूर्ण करने के उपरान्त, उसी पवित्र स्थान पर, ग्रन्थराज समयसार का भी पद्यानुवाद "कुन्द कुन्द का कुन्दन" के नाम में पूर्ण किया। और आज यह अध्यात्मरस से भरपूर कलशा का पद्यानुवाद "निजामृत-पान" के रूप में प्रस्तुत है। यह अनुवाद कहीं-कहीं पर शब्दानुवाद बन पड़ा है, तो कही-कही पर भाव निखर आया है। आशा ही नहीं अपितु विश्वास है कि "निजामृत पान" का पानकर भव्य मुमुक्षु पाठकगण भावातीत ध्यान में तैरते हुए अपने आप को उत्सर्गित पायेंगे चेतना में समर्पित पायेंगे !

यह सब वयोवृद्धि, तपोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध आचार्य गुरुवर श्री ज्ञानसागर महाराज श्री के प्रसाद का परिपाक है कि परोक्ष-रूप से उन्हीं के अभय चिह्न चिह्नित-युगल कर-कमलों में निजामृत पान का समर्पण करता हुआ······

गुरुचरणारविन्दचंचरीक—

ओं शुद्धात्मने नमः — ओं निरंजनाय नमः
ओं जिनाय नमः — ओं निजाय नमः

❋ निजामृतपान ❋

मंगलाचरण

— दोहा —

देव शास्त्र गुरु स्तवन

सन्मति को मम नमन हो, मम मति सन्मति होय।
सुर-नर-पशु-गति सब मिटे, गति पंचम-गति होय॥

चन्दन चन्दर-चाँदनी से जिन धुनि अति शीत।
उसका सेवन मैं करूँ, मन वच तन कर नीत॥

सुर, सुर-गुरु तक, गुरु चरण-रज सर पर सुचढ़ाय।
यह मुनि, मन गुरु भजन में, निशि दिन क्यों न लगाय?॥

श्री कुन्दकुन्दाय नमः

"कुन्द" "कुन्द" को नित नमूं, हृदय कुन्द खिल जाय।
परम सुगन्धित महक में, जीवन मम घुल जाय॥

श्री अमृतचन्द्राय नमः

"अमृतचन्द्र" से अमृत है, झरता जग अपरूप।
पी पी मम मन मृतक भी अमर बना सुख कूप॥

श्री ज्ञानसागराय नमः

तरणि "ज्ञान सागर" गुरो! तारो मुझे ऋषीश।
करुणा कर! करुणा करो कर से दो आशीष॥

प्रयोजन

"अमृत कलश" का मैं करूँ, पद्यमयी अनुवाद।
मात्र कामना मम रही, मोह मिटे परमाद॥

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचिताः

卐 नाटकसमयसारकलशाः 卐

१

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

२

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः
अनेकान्तमयी मूर्त्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥

३

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्य व्याप्तिकल्माषितायाः ।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्त्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥

४

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के,
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः ।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥

५

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः ।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किञ्चित् ॥

निजामृतपान

नाटक समयसार कलश का पद्यानुवाद

१/१*

मणिमय मनहर निज अनुभव से झग झग झग झग करती है,
तमो रजो अरु सतो गुणों के गण को क्षण में हरती है।
समय समय पर समयसार मय चिन्मय निज ध्रुव मणिका को,
नमता मम निर्मम मस्तक, तज मृण्मय जड़मय मणिका को॥

२/२

गाती रहती गुरु की गरिमा अगणित धारे गुण गण हैं,
मोह मान मद माया मद से रहित हुए हैं ये जिन हैं।
अनेकान्तमय वाणी जिनकी जीवित जग में तब लौं हो,
रवि शशि उडुगण लसते रहते विस्तृत नभ में जब लौं हो॥

३/३

सयमसार की व्याख्या करता चाहूँ कुछ नहि विरत रहूँ,
चिदानन्द का अनुभव करता निशिदिन निज में विरत रहूँ।
मोह भाव मम बिखर बिखर कर क्षण क्षण कण कण मिट जावे,
पर परिणतिका मूल यही बस मोह मूल झट कट जावे।

४/४

स्यात पद भूषित, दूषित नहिं हैं जिन वच मुझे सुहाते हैं,
उभयनयों के आग्रह कर्दम इकदम स्वच्छ धुलाते हैं।
जिन वच रमता सकल मोह का मुनि बन वन में वमन किया,
समकित अमित "समय" लख मुनि ने शत शत वन्दन नमन किया।

५/५

निर्विकल्पमय समाधि जब तक साधक मुनिगण नहिं पाते,
तब तक उनको प्रभु का आश्रय समयोचित है मुनि गाते।
निश्चय नयमय नभ में लखते चम चम चमके चेतन ज्योत,
अन्तर्विलीन मुनिवर को पर प्रभु आश्रय तो जुगनू ज्योत॥

---

* टिप्पणी : पद्यानुवाद में प्रथम क्रमांक कलश के पद्य का क्रम सूचक है। तथा/का पश्चाद्वर्ती अंक पद्यानुवाद की निरन्तरता (Continuity) का ज्ञापक है।

६

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् ।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्
तन्मुक्त्वानवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥

७

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति ॥

८

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे ।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम ॥

९

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रं ।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मि-
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥

१०

आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं ।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥

६/६

विशुद्ध नय का विषय भूत उस विरागता का पूरा पन,
पूर्ण ज्ञान का अवलोकन औ सकल संग से सूनापन।
निश्चय सम्यग्दर्शन है वह वही निजातम है प्यारा,
वही शरण है वही शरण लूँ तज नव तत्त्वों का भारा ॥

७/७

निर्मल निश्चय नय का तब तब आश्रय ऋषि अवधारत हो,
अन्तर्जगती तल में जब तक जग मग जग मग जागृत हो।
फलतः निश्चित लगता नहिं वो मुनि के मन में मैलापन,
नव तत्त्वों में भला ढला हो चला न जाता उजलापन ॥

८/८

नव तत्त्वों में ढलकर चेतन मृण्मय तन के खानन में,
अनुमानित हैं चिर से जैसा कनक कनक पाषाणन में।
वही दीखता समाधिरत को शोभित द्युतिमय शाश्वत है,
एक अकेला तन से न्यारा ललाम आतम भास्वत है ॥

९/९

निजानुभव का उद्भव उरमें विराग मुनि हुआ जभी,
भेदभाव का खेद भाव का प्रलय नियम से हुआ तभी।
प्रमाण नय निक्षेपादिक सब पता नहिं कब मिट जाते,
उदयाचल पर अरुण उदित हो उडुगण गुप लुप छुप जाते ॥

१०/१०

आदि रहित है, मध्य रहित है अन्त रहित है जयवन्ता,
विकल्प जल्पों संकल्पों से रहित अवगुणों, गुणवन्ता,
इस विध गाता निश्चय नय है पूरण आतम प्रकटाता,
समरस रसिया ऋषि उर में हो उदित उजाला उपजाता ॥

११

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरितरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठां ।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंताज्ज-
गदपगतमोही भूयसम्यक्स्वभावं ।।

१२

भूतं भान्तमभूतमेव रभसा निर्भिद्य बन्धं सुधीर्यद्यन्तः
किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात् ।
आत्मात्मानुभवैकगम्य महिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलङ्कपङ्कविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ।।

१३

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा ।
आत्मानमात्मनि निविश्य सुनिः प्रकम्प-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात् ।।

१४

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहिर्महः
परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा ।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितं ।।

१५

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मासिद्धिमभीप्सुभिः
साध्यसाधकभावेनद्विधैकः समुपास्यताम् ।।

११/११

क्षणिक भाव है तनिक काल लौं ऊपर ऊपर दिख जाते,
तन मन वच विधि दृग चरणादिक जिसमें चिर नहिं टिक पाते।
निज में निज से निज को निज ही निरख निरख तू नित्यालोक,
सकल मोह तत्र फिर झट करले अवलोकित सब लोका लोक ॥

१२/१२

विशुद्ध नय आश्रय ले होती स्वानुभूति है कहलाती,
वही परम ज्ञानानुभूति है वाणी जिन की बतलाती।
जान मान कर इस विध तुमको निजमें रमना वांछित है,
निर्मल बोध निरन्तर प्यारा परितः पूर्ण प्रकाशित है ॥

१३/१३

आत्मध्यान में विलीन होकर मोह भाव का करे हनन,
विगत अनागत आगत विधि के बन्धन तोड़े झट मुनि जन।
शाश्वत शिव बन शिव-सुख पाते लोक अग्र पर बसते हैं।
निज अनुभव से जाने जाते कर्म-मुक्त, ध्रुव लसते हैं ॥

१४/१४

चिन्मय गुण से परिपूरित है परम निराकुल छविवाली,
बाहर भीतर सदा एक सी लवणडली सी अति प्यारी।
सहज स्वयं बस लस लस लसती लसित चेतना उजयाली,
पीने मुझको सतत मिले बस ! समता रस की वह प्याली ॥

१५/१५

ज्ञान सुधा रस पूर्ण भरा है आतम नित्य निरन्जन है,
यदपि साध्य साधकवश द्विविधा तदपि एक मुनिरंजन है।
ऋद्धि सिद्धि को पूर्ण वृद्धि को यदि पाने मन मचल रहा,
स्वातम साधन करलो, करलो चंचल मन को अचल अहा ॥

१६

दर्शन ज्ञान चारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम् ।
मेचको मेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ।।

१७

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः ।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद्व्यवहारेण मेचकः ।।

१८

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैककः ।
सर्वभावान्तरध्वंसि स्वभावत्वादमेचकः ।।

१९

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयोः ।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ।।

२०

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया
अपतितमिदमात्म ज्योतिरुद्गच्छदच्छम् ।
सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नम्
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ।।

१६/१६

द्रव्य दृष्टि से निरखो आतम एक एक आकार बना,
पर्यय दृष्टी बनती दिखता अनेक—नैकाकारतना।
चंचलमन में वही उतरता विद्यादृगव्रत धरा हुआ,
दिखता समाधिरत मुनियों को सचमुच चिति से भरा हुआ ॥

१७/१७

दृग-व्रत बोधादिक में साधक नियम-रूप से ढलता है,
पल पल, पग पग आगे बढ़ता अविरल शिवपथ चलता है।
एक यद्यपि वह तदपि इसी से बहुविध स्वभाव धारक है,
इस विध यह व्यवहार कथन है कहते मुनि व्रत पालक हैं ॥

१८/१८

पूर्ण रूप से सदा काल से व्यक्त पूर्ण है उचित रहा,
ज्ञान-ज्योति से विलस रहा एक आप से रचित रहा।
वैकारिक वैभाविक भावों का निज आतम नाशक है,
इसीलिये वह माना जाता एक भाव का शासक है ॥

१९/१९

एक स्वभावी नैकस्वभावी द्रव्य गुणों से खिलता है,
ऐसा आतम चिन्तन से वह मोक्षधाम नहिं मिलता है।
समकित विद्याव्रत से मिलती मुक्ति हमें अविनश्वर है,
सच्चा साधन साध्य दिलाता इस विध कहते ईश्वर हैं ॥

२०/२०

रत्नत्रय में ढली घुली पर मिली खिली इक सारा है,
धारा प्रवाह बहती रहती जीवित चेतन धारा है।
कुछ भी हो पर स्वयं इसी में अवगाहित निज करता हूँ,
नहिं नहिं इस बिन शान्ति तृप्ति हो आत्मा ताप सब हरता हूँ ॥

२१

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा ।
प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकाराः संततं स्युस्त एव ॥

२२

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।
इह कथमपि नात्मा नात्मना साकमेकः
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥

२३

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्व कौतूहली स-
न्ननुभव भवमूर्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्तम् ।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्व मोहं ॥

२४

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये ।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतम्
वन्द्यास्तेऽष्ट सहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ॥

२५

प्राकारकवलितांबरमुपवनराजीनिगीर्णभूमितलं ।
पिबतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालं ॥

२१/२१

स्वपर-बोध का मूल स्वानुभव जहाँ जगत प्रतिबिम्बित हो,
जिन मुनिवर को मिला स्वतः या सुन गुरु वचन अशंकित हो।
पर न विभावों से वे अपना कलुषित करते जिनपन हैं,
कई वस्तुएँ झलक रही हैं तथापि निर्मल दर्पण हैं।

२२/२२

मोह मद्य का पान किया चिर अब तो तज जड़मति ! भाई,
ज्ञान सुधारस एक घूंट ले मुनि जन को जो अति भाई।
किसी समय भी किसी तरह भी चेतन तन में ऐक्य नहीं,
ऐसा निश्चय मन में धारो, धारो मन में दैन्य नहीं।।

२३/२३

खेल खेलता कौतुक से भी रुचि ले अपने चिन्तन में,
मर जा पर कर निजानुभव कर घड़ी घड़ी मत रच तन में।
फलतः पल में परम पूत को द्युतिमय निज को पायेगा,
देह-नेह तज, सज धज निजको निज से निजघर जायेगा।।

२४/२४

दशों दिशाओं को हैं करते स्नपित सौम्य शुचि शोभा से,
शत शत सहस्र रवि शशियों को कुन्दित करते आभा से।
हित मित वच से कर्ण तृप्त हैं करते दश-शत-अठ गुण घर,
रूप सलोना धरते हरते जन मन जिनवर हैं मुनिवर।।

२५/२५

गोपुर नभ का चुम्बन लेता ढकती वन छवि वसुधातक,
गहरी खाई मानो पीती निरीतलातल रासातल।
पुर वर्णन तो पुर वर्णन है पर नहिं पुर-पति की महिमा,
मानी जाती इसीलिये वह केवल जड़मय पुर-महिमा।।

२६

नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगमपूर्वसहजलावण्यं ।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्र रूपं परं जयति ॥

२७

एकत्वं व्यवहारतोन तु पुनः कायात्मनो निश्चयान्नु
स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः ।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं
भवेन्नातस्तीर्थंकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्माङ्गयोः ॥

२८

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां
नयविभजन युक्त्यात्यन्तमुच्छादितायाम् ।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुरन्नेक एव ॥

२९

अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगा-
दनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः ।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता
स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥

३०

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकं ।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ।

२६/२६

अनुपम अद्भुत जिनवर मुख है रग रग में है रूप भरा,
जय हो सागर सम गम्भीरा शम यम दम का कूप निरा।
रूपी तन का "रूप रूप" भर तन से जिनवर हैं न्यारे,
इसीलिये यह तन की स्तुति मुनिवर कहते हैं प्यारे ॥

२७/२७

तन की स्तुति से चेतन-स्तुति की औपचारिकी कथनी है,
यथार्थ नहिं तन चेतन नाता यह जिन-श्रुति, अघ-मथनी है।
चेतन स्तुति पर चेतन गुण से निर्विवाद यह निश्चित है,
अतः ऐक्य तन चेतन में वो नहीं सर्वथा किंचित् है ॥

२८/२८

स्वपर तत्व का परिचय पाया निश्चय नय का ले आश्रय,
जड़काया से निज चेतन का ऐक्य मिटाया बन निर्भय।
स्वरस रसिक वर बोध विकासित क्यों नहिं उस मुनिवर में हो,
भागा बाधक ! साधा साधक ! साध्य सिद्ध बस पल में हो ॥

२९/२९

संयम बाधक सकल संग को मन वच तन से त्याग दिया,
बना सुसंयत अभी नहीं पर प्रमत्त पर में राग किया।
तभी सुधी में निजानुभव का उद्भव होना संभव है,
पर भावों से रहित परिणती अविरत में ना संभव है ॥

३०/३०

सरस स्वरस परिपूरित परितः सहज स्वयं शुचि चेतन का,
अनुभव करता मन हर्षाता अनुपम शिव सुख के तन का।
अतः नहीं है कभी नहीं हैं मान मोह-मद कुछ मेरा,
चिदानन्द का अमिट धाम हूँ द्वैत नहीं अद्वैत सदा ॥

३१

इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके
स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकं ।
प्रकटित परमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः
कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्तः ।।

३२

मज्जन्तु निर्भरममी सममेव लोका
आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः ।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिन्धुः ।।

इति रंगभूमिका * १ *

३१/३१

राग रोष से दोष कोष से सुदूर शुचि उपभोग रहा,
शुद्धातम को सतत अकेला बिना थके बस भोग रहा।
निश्चय रत्नत्रय का बाना, धरता चित अभिराम रहा,
निज के आतम उपवन में ही करता आठों याम रहा ॥

३२/३२

परम शान्त रस से पूरित वह बोध सिन्धु बस है जिन में,
उज्ज्वल-उज्ज्वल उछल रहा है पूर्ण रूप से त्रिभुवन में।
भ्रम विभ्रम नाशक है प्यारा इसमें अवगाहन करलो,
मोह ताप संतप्त हुए तो हृदय ताप को तुम हरलो ॥

अथ जीवाजीवाधिकारः

१

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा
नासंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत् ।
आत्मारामममनन्तधाममहसाध्यक्षेण नित्योदितं
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो ह्लादयत् ।।

२

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकं ।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ।।

३

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयं ।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ।।

४

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रं ।
इममुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तं ।।

५

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः ।।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नोदृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ।।

१/३३

भवबन्धन के हेतुभूत सब कर्म मिटाकर हर्षाता,
जीव देहगत भेद-भिन्नता भविजन को है दर्शाता।
चपल पराश्रित आकुल नहिं पर उदार धृतिधर गत आकुल,
हरा-भरा निज उपवन में नित ज्ञान खेलता सुख संकुल॥

२/३४

राग रंग से अंग संग से शीघ्र दूर कर वच तन रे!
सार हीन उन जग कार्यों से विराम ले अब अयि! मन रे।
मानस-सर में एक स्वयं को मात्र मास छह देख जरा,
जड़ से न्यारा सबसे प्यारा शिवपुर दिखता एक खरा॥

३/३५

तन मन वच से पूर्ण यत्न से चेतन का आधार धरो,
संवेदन से शून्य जड़ों का अदय बनो संहार करो।
आप आपका अनुभव करलो अपने में ही आप जरा,
अखिल विश्व में सर्वोपरि है अनुपम अव्यय आतम खरा॥

४/३६

विश्वसार है सर्वसार है समयसार का सार सुधा,
चेतन रस आपूरित आतम शत् शत् बन्दन बार सदा।
असास्मय संसार क्षेत्र में निज चेतन से रहे परे,
पदार्थ जो भी जहाँ तहाँ है मुझ पर हैं निरे निरे॥

५/३७

वर्णादिक औ' रागादिक ये पर हैं पर से हैं उपजे,
समाधि रत को केवल दिखते सदा पुरुष जो शुद्ध सजे।
लहरें सर में उठती रहतीं झिलमिल झिलमिल करतीं हैं,
अन्दर तल में मौन छटा पर निश्चित मुनि मन हरतीं हैं॥

६

निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्तदेव तत्स्यान्न कथंचनान्यत् ।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासिं ।।

७

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदन्तु निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य ।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः ।।

८

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत् ।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ।।

९

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम् ।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ।

१०

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्त्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः ।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा
व्यक्तं व्यञ्जितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यतां ।।

६/३८

जग में जब जब जिसमें जो जो जन्मत हैं कुछ पर्यायें,
वे वे उसकी निश्चित होती समझ छोड़ दी शंकाएं।
बना हुआ जो कंचन का है सुन्दरतम असि कोष रहा,
विज्ञ उसे कांचन मय लखते कभी न असि को होष रहा॥

७/३९

वर्णादिक हैं रागादिक हैं गुण स्थान की है सरणी,
वह सब रचना पुद्गल की है जिन-श्रुति कहती भवहरणी।
इसीलिए ये रागादिक हैं मल हैं केवल पुद्गल हैं,
शुद्धात्मा तो जड़ से न्यारा ज्ञानपुंज है निर्मल है॥

८/४०

मृण्मय घटिका यदपि तदपि है घृत की घटिका कहलाती,
घृत संगम को पाकर भी पर घृतमय वह नहिं बन पाती।
वर्णादिक को रागादिक को तन मन आदिक को ढोता,
सत्व किन्तु यह, यह भी निश्चित तन्मय आत्मा नहिं होता॥

९/४१

आदिहीन है अन्तहीन है अचल अडिग है अचल बना,
आप आप से आना जाता प्रकट रूप से अमल तना।
स्वयं जीव ही सहज रूप से चम-चम चमके चेतन है,
समयसार का विश्वसार का शुचिमय शिव का केतन है॥

१०/४२

वर्णादिक से रहित सहित हैं धर्मादिक हैं ये पुद्गल,
प्रभु ने अजीव द्विधा बताया जिनका निर्मल अन्तस्तल।
अमूर्तता की स्तुति करता पर जड़ आतम न लख पाता,
चिन्मय चितिपण अचल अतः है आतम लक्षण चख! साता॥

११

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्तं ।
अज्ञानिनोनिरवधिप्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति ।।

१२

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेक नाट्ये
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः ।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातुमयमूर्त्तिरयं च जीवः ।।

१३

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः ।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकश द्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे ।।

इति जीवाजीवाधिकारः * २ *

११/४३

निरा जीव है अजीव न्यारा अपने अपने लक्षण से,
अनुभवता ऋषि जैसा हंसा जल जल पय पय तत् क्षण से।
फिर भी जिसके जीवन में हा! सघन मोह-तम फैला है,
भाग्यहीन वह कुधी भटकता भव-वन में उजेला है।।

१२/४४

बोध-हीन उस रंग मंच पर सुचिर काल से त्रिभुवन में,
रागी, द्वेषी जड ही दिखता रस लेता नित नर्तन में।
वीत-राग है वीत दोष है जड़ से सदा-विलक्षण है,
शुद्धात्मा तो शुद्धात्मा है चेतन जिसका लक्षण है।।

१३/४५

चेतन तन से भिन्न भिन्न नहिं पूर्ण रूप से हो जब लौं,
कर कर कर कर रहो चलाते आरा ज्ञानमयी तब लौं।
तीन लोक को विषय बनाता ज्ञाता दृष्टा निज आतम,
पूरण विकसित चिन्मय बल से निर्मलतम हो परमातम।।

जीवाजीवाधिकारः समाप्तः

— दोहा —

रग रग में चिति रस भरा, खरा निरा यह जीव।
तन धारी दुख सहत सुख, तन बिन सिद्ध सदीव।।

प्रीति भीति सुख दुखन से, धरे न चेतन-रीत।
अजीव तन धन आदि ये, तुम समझो भव भीत।।

१

एक: कर्त्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानां शमयदभित: कर्तृकर्मप्रवृत्ति ।
ज्ञानज्योति: स्फुरति परमोदात्यमत्यन्तधीरं
साक्षात्कुर्वन्निरुपधिपृथग्द्रव्यनिर्भासि विश्वं ।

२

परपरिणतिमुज्झत् खंडयद्भेदवादा-
निदमुदितमखण्डं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चै: ।
ननु कथमवकाश: कर्तृकर्मप्रवृत्ते-
रिह भवति कथं वा पौद्गल: कर्मबन्ध: ॥

३

इत्येवं विरचय्य संप्रति परद्रव्यान्निवृत्ति परां
स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवान: परं ।
अज्ञानोत्थित कर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्त: स्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकस्ति जगत: साक्षी पुराण: पुमान् ॥

४

व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते का कर्तृकर्मस्थिति: ।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण भिन्दंतमो
ज्ञानीभूय तदा स एष लसित: कर्तृत्वशून्य: पुमान् ॥

५

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्त: कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्तभेदात् ।
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न याव-
द्विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्य: ॥

१/४६

चेतन कर्ता मैं क्रोधादिक कर्म रहें मम "जड़" गाता,
उसके कर्तृ कर्मपन को जो शीघ्र नष्ट है कर पाता।
लोकालोकाऽऽलोकित करता ज्ञान-भानु द्युति पुञ्ज रहा,
निर्विकार है, निजाधीन है दीन नहीं दृग मञ्जु रहा।,

२/४७

पर परिणति को भेदभाव को विभाव भावों विदारता,
ज्ञानदिवाकर उदित हुआ हो समकित किरणें सुधारता।
कर्तापन तम कुकर्मपन तम फिर क्या वह रह पायेगा,
विधि बन्धन का गीत पुराना पुद्गल अब ना गायेगा।।

३/४८

जड़मय पुद्गल पर परिणति से पूर्ण रूप से विरत बना,
निश्चय निर्भय बनकर मुनि जब सहज ज्ञान में विरत तना।
ऊपर उठ सुख दुख से तजता कर्त्ता कुकर्म कारणता,
ज्ञाता दृष्टा साक्षी जग का पुराण पुरुषोतम बनता।।

४/४९

व्याप्यपना औ, व्यापकता वह पर में नहि निज द्रव्यन में,
व्याप्य और व्यापकता बिन नहीं कर्तृकर्म पर जीवन में।
बार बार मुनि विचार इस विधि करे सदा वे जगा विवेक,
हर कर्त्तापन तजते लसते अन्धकार का भगाऽतिरेक।।

५/५०

ज्ञानी निज-पर-परिणति लखता पर नहिं पुद्गल है,
निरे निरे हैं अतः परस्पर मिले न चेतन पुद्गल हैं।
जड़ चेतन में कर्त्त कर्म का भ्रम धारे जड़ शठ तब लौं,
आरे सम निर्दय बन काटत बोध उन्हेंनहि झट जब लौं।।

६

यः परिणमति स कर्त्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म ।
या परिणतिः क्रिया साय श्रमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥ त्र

७

एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य ।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥

८

नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत ।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥

९

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥

१०

आसंसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
र्दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहङ्काररूपं तमः
तद्भूतार्थ परिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजे-
त्तत्किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥

६/५१

स्वतंत्र होकर परिणमता है होता स्वतंत्र कर्त्ता है,
उसका जो परिणाम कर्म है कहते जिन विधि हर्ता हैं।
जो भी होती परिणति अविरल पदार्थ में है वही क्रिया,
वैसे तीनों एकमेक हैं यथार्थ में सुन सही जिया ! ।।

६/५२

सतत एक ही परिणमती है इक का इक परिणाम रहा,
इक की परिणति होती है यह वस्तु-तत्त्व अभिराम रहा।
इस विध अनेक होकर के भी वस्तु एक ही भाती है,
निर्मल गुण-गण धारक-जिनकी वाणी इस विध गाती है ।।

८/५३

कदापि मिलकर परिणमते नहि, दो पदार्थ नहिं संभव हो,
तथा एक परिणाम न भाता दो पदार्थ में उद्भव हो।
उभय-वस्तु में उसी तरह ही कभी न परिणति इक होती,
भिन्न भिन्न जो अनेक रहती एकमेक ना, इक होती ।।

९/५४

एक वस्तु के कर्ता दो नहिं इस विधि मुनिगण गाते हैं,
एक वस्तु के कर्म कभी भी दो नहिं पाये जाते हैं।
एक वस्तु की परिणतियाँ भी दो नहीं कदापि होतीं हैं,
एक एक ही रहती सचमुच अनेक नहिं नहिं होती हैं।।

१०/५५

भव भव भव-वन भ्रमता जीव भ्रमित हो यह मोही,
पर कर्तापन वश दुख महता सदतम-तम में निज द्रोही।
वीतरागमय निश्चय धारे एक बार यदि द्युति शाला,
फैले फलतः प्रकाश परितः कर्म बन्ध पुनि नहिं खारा ।।

न्   ११

आत्मभावान्करोत्यात्मा परभावान्सदा परः।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥

१२

अज्ञानतस्तु स तृणाभ्यवहारकारी
ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्ध्या
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम् ॥

१३

अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगा
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिव-
च्छुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः ॥

१४

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वाः पयसोर्विशेषं।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किञ्चनापि ॥

१५

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम् ॥

११/५६

पूर्ण सत्य है आतम करता अपने अपने भावों को,
पर भी करता पर भावों पर पर ना आतम भावों को।
सचमुच सबकुछ परका पर है आतम का बस आतम है,
जीवन भी संजीवन पीवन[1] आतम ही परमातम है।।

१२/५७

विज्ञा होकर अज्ञ बनी तू पर पुद्गल में रमती है,
गज-सम गन्ना खाती पर ना तृण को तजती भ्रमती है।
मिश्री मिश्रित दधि को पी पी पीने पुनि मति ! मचल रही,
रसानभिज्ञा पय को पीने गो दोहत भी विफल रही।।

१३/५८

रस्सी को लख सर्प समझ जन निशि में भ्रम से डर जाते,
जल लख मृग, मृगमरीचिका में पीने भगते मर जाते।
पवनाहत सर सम लहराता विकल्प जल्पों का भर्ता,
यदपि ज्ञान धन व्याकुल बनता तदपि भूल मैं पर कर्त्ता।।

१४/५९

सहज ज्ञान से स्वपर भेद को परम हंस यह मुनि नेता,
दूध दूध को नीर नीर को जैसा हंसा लख लेता।
केवल अलोल चेतन गुण को अपना विषय बनाता है,
कुछ भी फिर न करता मुनि बन मुनि-पन यही निभाता है।।

१५/६०

शीतल जल है अनल उष्ण है ज्ञान कराता यह निश्चय।
है अथवा ना लावण अन्न में ज्ञान कराता यह निश्चय।
सरस स्वरस परिपूरित चेतन क्रोधादिक से रहित रहा,
यह भी अवगम, मिटा कर्त्तपन ज्ञान-मूल हो उदित अहा।।

---

१. पेय

१६

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा ।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ।।

१७

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किं ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ।।

१८

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशङ्कयैव ।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिबर्हणाय संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्मकर्तृ ।।

१९

स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य स्वभावभूता परिणाम शक्ति : ।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यमात्मनस्तस्य स एव कर्त्ता ।।

२०

स्थितेति जीवस्य निरन्तराया स्वभावभूता परिणाम शक्तिः ।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यं स्वस्य तस्यैव भवेत्स कर्त्ता ।।

१६/६१

मूढ़ कुधी या पूर्ण सुधी भी निज को आतम करता है,
सदा सर्वथा शोभित होता धरे ज्ञान की स्थिरता है।
स्वभाव हो या विभाव हो पर कर्त्ता अपने भावों का,
परन्तु कदापि आतम नहिं है कर्त्ता पर के भावों का ।।

१७/६२

आतम लक्षण ज्ञान मात्र है स्वयं ज्ञान ही आतम है,
किस विध फिर वह ज्ञान छोड़कर पर को करता आतम है।
पर भावों का आतम कर्त्ता इस विधि कहते व्यवहारी,
मोह-मद्य का सेवन करते भ्रमते फिरते भव धारी ।।

१८/६३

चेतन आतम यदि जड़-कर्मों को करने में मौन रहे,
फिर इन पुद्गल कर्मों के हैं कर्त्ता निश्चित कौन रहे?
इसी मोह के तीव्र वेग के क्षयार्थ आगम गाता है,
पुद्गल, पुद्गल-कर्मों कर्त्ता जड़ से जड़ का नाता है ।।

१९/६४

स्वभाव भूता परिणति यह है पुद्गल की बस ज्ञात हुई,
रही अतः ना कुछ भी बाधा प्रमाणता की बात हुई।
जब जब इस विध निज में जड़ है विभाव आदिक करे वही,
तब तब उसका कर्त्ता होता 'जिन-श्रुति' आशय धरे यही ।।

२०/६५

स्वभाव-भूता परिणति यह है चेतन की बस ज्ञात हुई,
रही अतः ना कुछ भी बाधा प्रमाणता की बात हुई।
जब जब इस विध निज में चेतन विभाव आदिक करे वही,
तब तब उसका कर्त्ता होता 'जिन-श्रुति' आशय धरे यही ।।

२१

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः ।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥

२२

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि ।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥

२३

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाः ।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम् ॥

२४

य एव मुक्तानयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं ।
विकल्पजालच्युतशान्त चित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥

२५

एकस्य बद्धो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदीच्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥

२१/६६

विमल ज्ञान रस पूरित होते ज्ञानी मुनि का आशय है,
ऐसा कारण कौन रहा है क्यों ना हो अघ आयल है।
अज्ञानी के सकल-भाव तो मूढ़पने से रंजित हो,
क्यों ना होते गत-मल निर्मल, ज्ञानपने से बंचित हो।।

२२/६७

राग रंग सब तजते नियमित ज्ञानी मुनि ले निज आश्रम,
अतः ज्ञान जाल सिंचित सब ही भाव उन्हीं के हो, भा-मय।
राग रंग में अंग संग में निरत अतः वे अज्ञानी,
मूढ़पने के भाव सुधारें कलुषित पंकिल ज्यों पानी।।

२३/६८

निर्विकल्प मय समाधि गिरि से गिरता मुनि जब अज्ञानी,
प्रमत्त बन अज्ञान भाव को करता क्रमशः नादानी।
विकृत विकल्पों विभाव भावों को करता तब निश्चित है,
द्रव्य कर्म के निमित्त कारण जो हैं सुख से वंचित हैं।।

२४/६९

कुनय सुनय के पक्षपात से पूर्णरूप से विमुख हुए,
निज में गुप लुप्त छुपे हुए हैं निज के सम्मुख प्रमुख हुए।
विकल्प जल्पों रहित हुए हैं प्रशान्त मानस धरते हैं,
नियत रूप से निशि दिन मुनि "निजअमृतपान" वे करते हैं।।

२५/७०

इक नय कहता जीव बंधा है, इक नय कहता नहीं बंधा,
पक्षपात की यह सब महिमा दुःखी जगत है तभी सदा।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है।।

२६

एकस्य मूढो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

२७

एकस्य रक्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

२८

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्वत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

२९

एकस्य कर्त्ता न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३०

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

२६/७१

भिन्न भिन्न नय क्रमशः कहते आत्मा मोही निर्मोही,
इस विध दृढ़तम करते रहते अपने अपने मत को ही।
पक्षपात से रहित बना है मुनि मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्धज्ञान धन केवल चेतन चेतन है॥

२७/७२

इक नय मत है आत्मारागी इक कहता है गत रागी,
पक्षपात की निशा यही है केवल ज्योत न वो जागी।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान धन केवल चेतन चेतन है॥

२८/७३

इक नय कहता आत्माद्वेषी इक कहता है ना द्वेषी,
पक्षपात को रखने वाली सुखदात्री मति हो कैसी?
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभावी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है।

२९/७४

इक नय रोता आत्मा कर्त्ता कर्त्ता नहिं है इक गाता,
पक्षपात से सुख नहि मिलता पक्षपात की यह गाथा।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्धज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है॥

३०/७५

इक नय कहता आत्मा भोक्ता भोक्ता नहिं है इक कहता,
पक्षपात का प्रवाह जड़ में अविरल देखो! वह बहता।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है॥

३१

एकस्य जीवो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातरतस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३२

एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युनपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३३

एकस्य हेतुर्न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३४

एकस्य कार्यं न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३५

एकस्य चैको न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३१/७६

इक नय मत में जीव रहा है, इक कहता है जीव नहीं,
पक्षपात से घिरा हुआ मन ! सुख पाता नहिं जीव नहीं।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

३२/७७

जीव सूक्ष्म है सूक्ष्म नहीं है भिन्न भिन्न नय कहते हैं,
इस विध पक्षपात से जड़ जन भव भव में दुख सहते हैं।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है.
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

३३/७८

इक नय कहता जीव हेतु है हेतु नहीं है इक गाता,
इस विध पक्षपात कर मन है वस्तु तत्व को नहीं पाता।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

३४/७९

जीव कार्य है कार्य नहीं है भिन्न भिन्न नय हैं कहते,
इस विध पक्षपात जड़ करते परम तत्व को नहिं गहते।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

३५/८०

इक नय कहता जीवभाव है, भाव नहीं है इक कहता,
इस विध पक्षपात कर मन है वस्तु तत्व को नहीं गहता।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

३६

एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३७

एकस्य शान्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३८

एकस्य नित्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३९

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।

४०

एकस्य नाना न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

३६/८१

एक अपेक्षा जीव एक है एक अपेक्षा एक नहीं,
ऐसा चिंतन जड़ जन करते पक्षपात कर दुख सहते ।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

३७/८२

जीव सान्त है सान्त नहीं है इस विध दो नय हैं कहते,
ऐसा चिन्तन जड़ जन करते पक्षपात कर दुख सहते ।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

३८/८३

जीव नित्य है नित्य नहीं है भिन्न भिन्न नय दो कहते,
इस विध चिन्तन पक्षपात हैं पक्षपात को जड़ गहते ।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

३९/८४

अवाच्य आत्मा वाच्य रहा है, भिन्न भिन्न नय कहते हैं,
इस विध चिन्तन पक्षपात है करते जड़ जन दुख सहते ।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

४०/८५

इक नय कहता आत्मा नाना, नाना ना है इक कहता,
इस विध चिन्तन पक्षपात है करता यदि तू दुख सहता ।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ।।

४१

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

४२

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

४३

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

४४

एकस्य भातो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।

४५

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्प जाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम् ।
अन्तर्बहिस्समरसैकरसस्व भावं
स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम् ।।

४१/८६

जीव ज्ञेय है ज्ञेय नहीं भिन्न भिन्न नय हैं कहते,
इस विध चिंतन पक्षपात हैं करते जड़ जन दुख सहते।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ॥

४२/८७

जीव दृश्य है जीव दृश्य नहिं भिन्न भिन्न नय हैं कहते,
इस विध चिंतन पक्षपात है करते जड़ जन दुख सहते।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ॥

४३/८८

जीव वेद्य है वेद्य जीव नहिं भिन्न भिन्न नय हैं कहते,
इस विध चिंतन पक्षपात है करते जड़ जन दुख सहते।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ॥

४४/८९

जीव आज भी प्रकट स्पष्ट है प्रकट नहिं दो नय गाते,
एक विध चिन्तन पक्षपात है करते जड़ जन दुख पाते।
पक्षपात से रहित बना है मुनि-मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध ज्ञान-धन केवल चेतन चेतन है ॥

४५/९०

पक्षपात-मय नयवन जिसने सुदूर पीछे छोड़ दिया,
विविध विकल्पों अल्पों से बस चंचल मन को मोड़ दिया।
बाहर भीतर समरस इक रस महक रहा है, अपने को,
अनुभवता मुनि मूर्तरूप से स्वानुभूति के सपने को ॥

४६

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ।।

४७

चित्स्वभावभरभावितभावा भाव भाव परमार्थतयैकं ।
बन्धपद्धतिमपास्य समस्तां चेतये समयसारमपारं ।।

४८

आक्रमन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारोयः समस्य भाति निभृतैरास्वद्यमानः स्वयम् ।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान् पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोऽप्ययम् ।।

४९

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात् ।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्माहर-
न्नात्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ।।

५०

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलं ।
न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ।।

४६/६१

रंग बिरंगी तरल तरंगें क्षण-रुचि[1] सम झट उठ मिटती,
विविध नयों की विकल्प माला मानस तल में नहिं उठती।
शत शत सहस्रों किरण संग ले झग झग करता जग जाता,
निजानुभवों के बल सम चेतन भ्रम-तम लगभग भग जाता॥

४७/६२

स्वभाव भावों विभाव भावों भावा भावों रहित रहा,
केवल निर्मल चेतनता से खचित रहा है भरित रहा।
उसी सारमय समयसार को अनुभवता कर वन्दन मैं,
विविध विधी के प्रथम तोड़ के तड़ तड़ तड़ तड़ बन्धन मैं॥

४८/६३

निर्भय निश्चल निरीह मुनि जब पक्षपात बिन जीता है,
समरस पूरित समयसार को सहर्ष सविनय पीता है।
पुण्य पुरुष है परम रूप है पुराण पावन भगवन्ता,
ज्ञान वही है दर्शन भी है सब कुछ वह जिन अरहन्ता॥

४९/६४

विकल्प मय घन कानन में चिर भटका था वह धूमिल था,
मुनि का विबोध रस निज घर में विवेक पथ से आ मिलता॥
खुद ही भटका खुद ही आत्मा लौटा निज में घुल जाता,
फैला जल भी निचली गति से बह बह पुनि व मिल जाता॥

५०/६५

विकल्प करने वाला आत्मा कर्त्ता यथार्थ कहलाता,
विकल्प जो भी उर में उठता कर्म नाम वह है पाता।
जब तक जिसका विकल्प दल से मानस तल वो भूषित है,
तब तक कर्तृ कर्म पन मल से जीवन उसका दूषित है॥

---

१. (अ) स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विड्भा भाश्छवि द्युतिदीप्तयः। —अमरकोष, १. ३. ३४
(ब) गभस्तौ च रुचिः स्त्रियाम्। —वही, ३. ३. २९
क्षणरुचि = विद्युत्

५१

यः करोति स करोति केवलं यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलं ।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित् यस्तु वेत्ति स करोति स क्वचित् ॥

५२

ज्ञप्तिः करोतौ नहि भासतेऽन्तर्ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः ।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं ॥

५३

कर्त्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्त्तरि
द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृ कर्म स्थितिः ।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्नेपथ्ये वत नानटीति रभसान्मोहस्तथाप्येष किं ॥

५४

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव ।
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि ।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमन्तस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥

इति कर्तृकर्माधिकारः * ३ *

५१/९६

विराग यति का कार्य स्वयं को केवल लखना लखना है,
रागी जिसका कार्य, कर्म को केवल करना करना है।
सुधी जानता इसीलिये मुनि कदापि विधि को नहिं करता,
कुधी जानता कभी नहीं है चूंकि निरन्तर विधि करता॥

५२/९७

ज्ञप्ति क्रिया में शोभित होती कदापि करोति क्रिया नहीं,
उसी तरह बस करण-क्रिया में ज्ञप्ति क्रिया वह जिया ! नहीं।
करण क्रिया औ' ज्ञप्ति क्रिया ये भिन्न हैं अतः यदा,
ज्ञाता कर्त्ता भिन्न ही सुसिद्ध होते स्वतः सदा॥

५३/९८

कर्म न यथार्थ कर्त्ता में हो नहीं कर्म करता हो,
हुए निराकृत जब ये दो, क्या कर्तृपन सत्ता हो।
ज्ञान ज्ञान में कर्म कर्म में अटल सत्य बस रहा यही,
खेद ! मोह नेपथ्य किन्तु ना तजता, नाचता रहा वही॥

५४/९९

चिन्मय द्युति से अचल उजलती ज्ञान ज्योति जब जग जाती,
मुनिवर अन्तर्जगतीतल को परितः उज्जवल कर पाती।
ज्ञान ज्ञान तब केवल रहता रहता पुद्गल पुद्गल है,
ज्ञान कर्म का कर्त्ता नहिं है ढले न विधि में पुद्गल है॥

इति कर्त्तृकर्माधिकारः समाप्तः

दोहा

निज गुण कर्त्ता आतम है पर कर्त्ता पर आप
इस विध जाने मुनि सभी निजरत हो जो पाप॥

प्रमाद जब तक तुम करो पर कर्त्तापन मान।
तब तक विध-बंधान हो हो न समय का ज्ञान॥

अथ पुण्यपापाधिकारः

१

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन् ।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥

२

एको दूरात्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना-
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तथैव ।
द्वावप्येतौ युगपदु दुरान्निर्गतौ शूद्रि कायाः
शूद्रौ साक्षादथ च चरतो जाति भेदभ्रमेण ॥

३

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः ।
तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतुः ॥

४

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात् ।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥

५

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैःकर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः ।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥

१/१००

भेद शुभाशुभ मिस से द्विविधा विधि है स्वीकृत यदपि रहा,
उसको लखता निज अतिशय से बोध "एक विध" तदपि रहा।
शरद चन्द्र सम बोध चन्द्रमा निर्मल निश्चल मुदित हुआ,
मोह महा तम दूर हटाता सहज स्वयं अब उदित हुआ॥

२/१०१

ब्राह्मणता के मद वश इक है मदिरादिक से बच जीता,
स्वयं शूद्र हूँ इस विध कहता मदिरा प्रतिदिन इक पीता।
यद्यपि दोनों शूद्र रहे हैं युगपत् शूद्री से उपजे,
किन्तु जाति-भ्रम वश ही इस विध जीवन अपने हैं समझे॥

३/१०२

कर्म हेतु है पुद्गल-आश्रय पुद्गल स्वभाव फल पुद्गल,
अतः कर्म में भेद में है अभेद नय से सब पुद्गल।
और शुभाशुभ बंध अपेक्षा एक इष्ट है बन्धन है,
अतः कर्म है एक नियम से कहते जिन मुनि रंजन हैं॥

४/१०३

कम अशुभ हो अथवा शुभ हो भव बन्धन का साधक है,
मोक्ष मार्ग में इसीलिए वह साधक नहिं है बाधक है।
किन्तु ज्ञान निज विराग, शिव का साधक है दुख हारक है,
वीतराग सर्वज्ञहितंकर कहते शिव-सुख साधक हैं॥

५/१०४

पूर्ण शुभाशुभ करणी तज बन निष्क्रिय निज में निरत रहें,
मुनिगण अशरण नहिं, पर सशरण अविरत से वे विरत रहें।
ज्ञान ज्ञान में घुल जाना मुनि की परम शरण बस है,
निशि दिन सेवन करते रहते तभी सुधामय निज रस हैं॥

६

यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवममचलमाभाति भवनं
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
ततोऽन्यद्बन्धस्यस्वयमपि ययो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितं ॥

७

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा ।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥

८

वृत्तं कर्मस्वभावेनः ज्ञानस्य भवनं न हि ।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्ष हेतुर्न कर्म तत् ॥

९

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च ।
मोक्षहेतुतिरोधायि भावत्वात्तन्निषिध्यते ॥

१०

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा ।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्
नैः कर्मप्रतिबद्धमुद्ध तरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥

६/१०५

अमिट अतुल है अनुपम आतम ज्ञान-धाम वह सचमुच है,
मोक्ष मार्ग है मोक्ष धाम है स्वयं ज्ञान ही सब कुछ है।
उससे न्यारा सारा खारा बन्ध हेतु है बन्धन है,
ज्ञान-लीनता वही स्वानुभव शिव पथ उसको वन्दन है ॥

७/१०६

ज्ञान ज्ञान में स्थित हो जाता अन्य द्रव्य में नहिं भ्रमता,
वही ज्ञान का ज्ञानपना है जिसको यह मुनि नित नमता।
आत्म द्रव्य के आश्रित वह है, आश्रय जिसका आतम है,
मोक्ष मार्ग तो वही ज्ञान है, कहते जिन परमातम है ॥

८/१०७

कर्म मोक्ष का नियम रूप से हो नहिं सकता कारण है,
स्वयं बन्धमय कर्म रहा है भव बन्धन का कारण है।
तथा मोक्ष के साधन का भी अवरोधक औ नाशक है,
अतः यहाँ पर निषेध उसका करते जिन मुनि शासक है ॥

९/१०८

कर्म रूप में यदि ढलता है मानो ज्ञान वह भूल अहा !
ज्ञान ज्ञान नहिं हो सकता वो ज्ञानपने से दूर रहा।
पुद्गल आश्रित कर्म रहा है मृण्मय मूर्त अचेतन है,
अतः कर्म नहिं मोक्ष हेतु नहिं-हो सकता सुख केतन है ॥

१०/१०९

मोक्षार्थी को मोक्ष मार्ग में कर्म त्याज्य जड़ पुद्गल है,
पाप रहो या पुण्य रहो फिर सब कुछ कर्दम दलदल है।
दृग व्रत आदिक निजपन में ढल मोक्ष हेतु तब बन जाते,
निष्क्रिय विबोध रस झरता, मुनि स्वयं सुखी तब बन पाते ॥

११

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा
कर्मज्ञान समुच्चयोऽपिविहितस्तावन्न काचित्क्षतिः ।
किं त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय त-
न्मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ।।

१२

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति य-
न्मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदति स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः ।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वंशयान्ति प्रमादस्य च ।।

१३

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाप्यत्यीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन ।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धमारब्ध केलि
ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जजृम्भे भरेण ।।

इति पुण्यपापाधिकारः * ४ *

११/११०

कर्त्ता नहिं पर मोह उदय वह होता मुनि में जब तक है
समीचीन नहिं ज्ञान कहाता अबुद्धि-पूर्वक तब तक है।
सराग मिश्रित ज्ञान सुधारा बहती समाधिरत मुनि में,
राग बन्धका, ज्ञान मोक्ष का कारण हो भय कुछ नहिं पै ।।

१२/१११

ज्ञान बिना रट निश्चय निश्चय निश्चय वादी भी डूबे,
क्रिया कलापी भी ये डूबे डूबे संयम से ऊबे ।
प्रमत्त बन के कर्म न करते अकम्प निश्चय शैल रहे,
आत्म-ज्ञान में लीन किन्तु मुनि तीन लोक पे तैर रहे ।।

१३/११२

भ्रम वश विधि में प्रभेद करता मोह मद्य पी नाच रहा,
राग-भाव जो जड़मय जड़ से निज बल से झट काट अहा ।
सहज मुदित शुचि कला संग ले केली अब प्रारम्भ किया,
भ्रम-तम-तम को पूर्ण मिटाकर पूर्ण ज्ञान शशि जन्म लिया ।।

इति पुण्यपापाधिकारः समाप्त

— दोहा —

विभाव परिणति यह सभी पुण्य रहो या पाप ।
स्वभाव मिलता, जब मिटे पाप पुण्य परिताप ।।

पाप प्रथम मिटता प्रथम, तजो पुण्य फल भोग ।
पुनः पुण्य मिटता धरो आतम-निर्मल योग ।।

卐

१

अथ महामदनिर्भरमन्थरं समररंगपरागतमास्रवं ।
अयमुदारगभीरमहोदयो जयति दुर्जयबोध धनुर्द्धरः ॥

२

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो जीवस्य स्याद् ज्ञाननिवृत्त एव ।
रुन्धन्सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघानेषो भावः सर्वभावास्रवाणाम् ॥

३

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः ।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥

४

सन्नयस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयम्
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतु स्वशक्ति स्पृशन् ।
उच्छिन्दन् परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भव-
न्नात्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ॥

५

सर्वस्यामेव जीवन्त्यान्द्रव्यप्रत्ययसंततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ॥

१/११३

आस्रव भट झट कूद पड़ा है क्रुद्ध हुआ है अबरण में,
महामान का रस वह जिसके भरा हुआ है तन मन में।
ज्ञान मल्ल भी धनुष्य धारी उस पर टूटा धृति-धर है,
क्षण में आस्रव जीत विजेता वह बलधारी सुखकर है॥

२/११४

राग रोष से मोह द्रोह से विरहित आतम भाव सही,
ज्ञान सुधा से रचा हुआ है जिन आगम का भाव यही।
नियम रूप से अभाव मय है भावास्रव का रहा वही,
तथा निवारक निमित्त से है द्रव्यास्रव का रहा सही॥

३/११५

भावास्रव के अभावपन पा व्रती विरागी वह ज्ञानी,
द्रव्यास्रव से पृथक रहा हूँ बनके जाना मुनि ध्यानी।
ज्ञान भाव का केवल धारी ज्ञानी निश्चित वही रहा,
निरास्रवी है सदा निराला जड़ से ज्ञायक सही रहा॥

४/११६

संबुद्धि पूर्वक सकल राग से होते प्रथम अछूते हैं
अबुद्धि पूर्वक राग मिटाने बार बार निज छूते हैं।
यमी ज्ञान की चंचलता को तभी पूर्णतः अहो मिटा,
निरास्रवी वे केवल ज्ञानी बनने निज में स्वको बिठा॥

५/११७

जिसके जीवन में वह अविरल दुरित दुःखमय जल भरिता,
जड़मय पुद्गल द्रव्यास्रव की बहती रहती निज सरिता।
फिर भी ज्ञानी निरास्रवी वह कैसे इह विध हो कहते,
ऐसी शंका मन में केवल शठजन भ्रम वश हो गहते॥

६

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपाः।
तदपि सकलरागद्वेषमोह व्युदासा-
दवतरति न जातुज्ञानिः कर्मबन्धः ॥

७

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसंभवः।
तत एव न बन्धोऽस्य तेहि बन्धस्य कारणम ॥

८

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिन्ह-
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः
पश्यन्ति बन्धविधुरं समस्य सारं ॥

९

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥

१०

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्यागाद्बन्ध एव हि ॥

६/११८

उदय काल आता नहिं जब तक तब तक सत्ता नहिं तजते,
पूर्व बद्ध विधि यद्यपि रहते ज्ञान जन के उर सजते।
पर न नूतन नूतन विधि आ उनके मन पै अंकित हो,
रागादिक से रहित हुए हो जब मुनि पूर्ण अशंकित हो ॥

७/११९

ज्ञानी जन के ललित भाल पर रागादिक का वह लाँछन,
संभव हो न असम्भव ही है वह तो उज्ज्वलतम काँचन।
वीतराग उन मुनि जन को फिर प्रश्न नहिं विधि बन्धन का,
रागादिक ही बन्धन कारण कारण है मन स्पन्दन का ॥

८/१२०

निर्मल-विकसित-बोधधाम मय विशुद्ध नय का ले आश्रय,
मन-का निग्रह करते रहते मुनि जन गुण गण के आलय।
राग मुक्त हैं रोष मुक्त हैं मुनि वे मुनि जन रंजन हैं,
समरस पूरित समयसार का दर्शन करते वन्दन हैं ॥

९/१२१

जब यति विशुद्ध नय से चिगते उलटे लटके वे झूले,
विकृत विभावों निश्चित करते आतम-बोध ही तब भूले।
विगत समय में अर्जित विधि के आस्रव वश बहु विकल्प दल,
करते बँधते विविध विधि के बन्धन से खो अनल्प बल ॥

१०/१२२

यही सार है समयसार का छन्द यहाँ है यह गाता,
हेय नहीं है विशुद्ध नय पर ध्येय साधु का वह साता।
तथापि उसको जड़ ही तजते भजते विधि के बन्धन को,
जो नहिं मुनि जन तजते इसको भजते नहिं विधि बन्धन को ॥

११

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबन्धन्धृतिम्
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम् ।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमाचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः ।।

१२

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकान्ताद चलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ।।

इत्यास्रवोनिष्क्रान्तः * ५ *

११/१२३

अनादि अक्षय अचल बोध में वृति बाँधे विधि नाशक है,
अतः शुद्धनय उन्हें त्याज्य नहिं मुनि या मुनि जन शासक है।
लखते इसमें स्थित मुनि निज बल आकुंचन कर बहिराता,
एक ज्ञान धन पूर्ण शान्त जो अतुल अचल द्युति मम भाता ॥

१२/१२४

रागदिक सब आस्रव विघटे जब निज मंदिर में अन्दर,
झाँक झाँक कर देखा मुनि ने दिखता झक झक अति सुन्दर।
तीन जगत के जहाँ चराचर निज प्रति-छवि ले प्रकट रहें,
अतुल अचल निज किरणों सह वह बोध भानु मम निकट रहें ॥

इति आस्रवाधिकारः समाप्त

— दोहा —

राग रोष अरु मोह से रंजित वह उपयोग।
वसु विध-विधि का नियम से पाता दुखकर योग ॥

विराग समकित मुनि लिये जीता जीवन सार।
कर्मास्रव से तब बचे निज में करें बिहार ॥

१

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम् ।
व्यावृत्तंपररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ॥

२

चद्रूप्यं जड़रूपतां च दधतोः कृत्वा विभागंद्वयो
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च ।
भेदज्ञानमुदेति निर्म्मलमिदं मोदध्वमध्यासितः
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तोद्वितीयच्युताः ॥

३

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ।
तदयमुदयदात्मारामात्मानमात्मा
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥

४

निज महिमरतानां भेद-विज्ञानशक्त्या
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः ।
अचलितमखिलान्य द्रव्यदूरेस्थितानां
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥

५

सम्पद्यते संवर एष साक्षाच्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात् ।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥

१/१२५

संवर का रिपु आस्रव को यम मन्दिर बस दिखलाती है,
दुख हर सुखकर, वर संवर धन सहज शीघ्र प्रकटाती है।
पर परिणति से रहित नियम नित निज सम्यक् विलस रही,
ज्योति शिखा वह चिन्मय निज स्वर किरणावलि से विहस रही ॥

२/१२६

ज्ञान राग ये चिन्मय जड़ से किन्तु मोह वश एक लगे,
जिन्हें विभाजित निज बल से कर स्व पर बोध उर देख जगे।
उस भेद ज्ञान का आश्रय ले तुम बन कर पूरण गत रागी,
शुद्ध ज्ञान धन का रस चाखो सकल संग के हो त्यागी ॥

३/१२७

धारा प्रवाह बहने वाला ध्रुव बोधन में सुरत यमी,
किसी तरह शुद्धातम ध्याता विशुद्ध बनता तुरत दमी।
हरित भरित निज कुसुमित उपवन-में तब आतम रमता है,
पर परिणति से पर द्रव्यन में पल भर भी नहिं भ्रमता है ॥

४/१२८

अनुपम अपनी महिमा में मुनि भेद ज्ञान वश रमते हैं,
शुद्ध तत्त्व का लाभ उन्हें तब हो हम उनको नमते हैं।
उसको पावे पर यति निश्चल अन्य द्रव्य से दूर रहें,
मोक्षधाम बस पास लगेगा सभी कर्म चकचूर रहें ॥

५/१२९

विराग मुनि में जब जब होता भव हर, सुखकर संवर है,
शुद्धातम के आलम्बन का फल कहते दिग् अम्बर है।
शुचितम आतम भेद ज्ञान से सहज शीघ्र ही मिलता है,
भेद ज्ञान तू इसीलिये भज जिससे जीवन खिलता है ॥

६

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥

७

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥

८

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्रामप्रलय करणात्मकर्म्मणां संवरेण ।
बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥

इति संवरो निष्क्रान्तः * ६ *

६/१३०

तब तक मुनिगण अविकल अविरल तन मन वच से बस भावें
भेद ज्ञान को, जीवन अपना समझ उसी में रम जावें।
ज्ञान ज्ञान में सहज रूप से जब तक स्थिरता नहिं पावें,
पर परिणतिमय चंचलता को तज निज पन को भज पावें ।।

७/१३१

सिद्ध शुद्ध बन तीन लोक पर विलस रहे अभिराम रहे,
तुम सब समझो भेद ज्ञान का मात्र अहो परिणाम रहे ।
भेद ज्ञान के अभाव वश ही भव, भव, भव बन फिरते हैं,
विधि बन्धन में बंधे मूढ़जन भवदधि नहि ये तिरते है ।।

८/१३२

भेद ज्ञान बल शुद्ध तत्त्व में निरत हुआ मुनि तज अम्बर,
राग रोष का विलय किया पुनि किया कर्म का वर संवर ।
उदित हुआ तब मुदित हुआ ध्रुव अचल बोध शुचि शाश्वत है,
खिला हुआ है खुला है एक आप बस भास्वत है ।।

इति संवराधिकारः समाप्त

— दोहा —

रागादिक के हेतु को तजते अम्बर छाव ।
रागादिक पुनि मनि मिटा भजते संवर भाव ।।

बिन रति-रस चख जो रहें निज घर में कर वास ।
निज अनुभव-रस पी रहें उन मुनि का मैं दास ।।

अथ निर्जरा प्रविशति

१

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरान्धृत्वा परः संवरः
कर्म्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः ।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धमधुना व्याजृम्भते निर्ज्जरा
ज्ञानज्योतिरपावृतं न हि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति ॥

२

तज् ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल ।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते ॥

३

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषय सेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥

४

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ।
यस्माज् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥

५

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्बन्तां समिति परतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः ॥

१/१३३

रागादिक सब आस्रव भावों को निज बल से बिदारता,
संवर था वह भावी विधि को सुदूर से ही निवारता।
धधक रही अब सही निर्जरा पूर्व-बद्ध विधि जला जला,
सहज मिटाती रागादिक से ज्ञान न हो फिर चला चला ॥

२/१३४

यह यब निश्चित अतिशय महिमा अविचल शुचितम ज्ञानन की,
अथवा मुनि का विरागता की समता में रममानन की।
विधि के फल को समय समय पर भोग भोगता भी त्यागी,
तभी नहीं वह विधि से बंधता बंधे असंयत पर रागी ॥

३/१३५

इन्द्रिय विषयों का मुनि सेवन करता रहता है प्रतिदिन,
किन्तु विषय के फल को वह नहि पाता, रहता है रति बिन।
आत्म ज्ञान के वैभव का औ' विरागता का यह प्रतिफल,
सेवक नहि हो सकता फिर भी विषय सेव कर भी प्रतिपल ॥

४/१३६

ज्ञान शक्ति को विराग बल को सम्यग्दष्टि ढोती हैं,
पर को तजने निज को भजने में जो सक्षम होता है।
पर को पर ही निज को निज हो जान मान मुनि निश्चित ही,
निजमें रमता पर-रति तजता राग करें नहि किंचित् भी ॥

५/१३७

दृग् धारक[1] हम अतः कर्म नहिं बँधते हमसे बनते हैं,
रागी मुनि ही इस विध बकते वृथा गर्व से तनते हैं।
यदपि समितियां पालें वे तो फिर भी अघ से रंजित है,
स्वपर-भेद के ज्ञान बिना वे समदर्शन से वंचित हैं ॥

---

१. सम्यग्दृष्टि

६

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुद्ध्यध्वमन्धाः ।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्मेति ॥

७

एकमेवहि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम् ।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानियत्पुरः ॥

८

एक ज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्
स्वादन्द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्ति विदन् ।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रस्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयत्किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकतां ॥

९

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरस. स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥

१०

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्म्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं ।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥

६/१३८

चिर से रागी प्रमत्त बनके भ्रम वश करता शयन जहाँ,
दुख कर पर घर, निज घर नहिं वो जान ! खोल तू नयन अहा !
निज घर तो बस निज घर ही है सुखकर है सुख केतन है,
शुद्ध शुद्धतर विशुद्धतम है अक्षय ध्रुव है चेतन है ॥

७/१३९

पद पद पर बहु पद मिलते हैं पर वे दुख प्रद पर-पद हैं,
सब पद में बस पद ही वह पद सुखद निरापद **"निज-पद"** है।
जिसके सम्मुख सब पद दिखते अपद दलित पद आपद हैं,
अतः स्वाद्य है पेय **"निजी पद"** सकल गुणों का आस्पद है ॥

८/१४०

आदी आत्मा निज अनुभव का ज्ञान ज्ञान को रख साता,
भेद भिन्नता खेद खिन्नता घटा हटा कर इक भाता।
ज्ञायक रस से पूरित रसको केवल निशि दिन चखता है,
नीरस रस मिश्रित रस को नहिं चखता मुनि निज लखता है ॥

९/१४१

सकल अर्थ मय रस पी पीकर मानो उन्मद सी निधियाँ,
उंजल उजल ये उछल उछलती निज संवेदन की छवियाँ।
अभिन्न चिन्मय रस पूरित हैं भगवन सागर एक रहें,
अगणित लहरें उठती जिन में इसीलिये भी नैक रहें ॥

१०/१४२

सूख सूखकर सोंठ भले हों-शिवपथ-च्युतव्रत भरणों से,
तपन तप्त हो तापस गिरी पे केवल जप तप चरणों से।
मोक्ष मात्र नित निरा निरामय निज संवेदन ज्ञान सही,
ज्ञान बिना मुनि पा नहिं सकते शिव को इस विध ज्ञान सही ॥

११

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं सहजबोधकलासुलभं किल।
तत इदं निजबोधकलाबलात्कलयितुं यततां सततं जगत् ।।

१२

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्र चिन्तामणिरेष यस्मात् ।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ।।

१३

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्त मेष सामान्यतः स्वपरयोर विवेक हेतुं ।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद्भूयस्तमेव परिहर्त्तुमयं प्रवृत्तः ।।

१४

पूर्वबद्धनिजकर्म्मविपाकाद् ज्ञानिनो यदि भवत्युपयोगः ।
तद्भवत्वथ च रागवियोगान्नूनमेति न परिग्रहभावम् ।।

१५

वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्वेद्यते न खलु कांक्षितमेव ।
तेन कांक्षति न किञ्चन विद्वान् सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ।।

११/१४३

मोक्ष धाम यह मिले न केवल क्रिया काण्ड के करने से,
परन्तु मिलता सहज सुलभ निज बोधन में नित चरने से।
सदुपयोग तुम करो इसी से स्वीय बोध जब मिला तुम्हें,
सतत यतन यति जगत[1]! में करो मिने शिव किला तुम्हें ॥

१२/१४४

ज्ञानी मुनि तो सहज स्वयं ही देव रूप है सुख शाला,
चिन्मय चिन्तामणि चिन्तित को पाता अचिंत्य बल वाला।
काम्य नहीं कुछ कार्य नहीं कुछ सब कुछ जिसको साध्य हुआ,
पर संग्रह को अतः सुधी नहिं होगा था है वाध्य हुआ ॥

१३/१४५

स्वपर बोध का नाशक जो है बाधक तम है शिव मग को,
तजकर इस विध विविध संग को दशविध बाहर के अघ को।
भीतर घुस घुस बनकर मुनि अब केवल ज्ञानावरणी को,
पूर्ण मिटाने, मिटा रहा है, मानस-कालुष सरणी को ॥

१४/१४६

गत जीवन में अर्जित विधि के उदयपाक जब आता है,
ज्ञानी मुनि को भी उसका रस चखना पड़ तब जाता है।
विषयों के रस चखते पर वे रस के प्रति नहीं रति रखते,
विगतराग हैं परिग्रही नहिं नियमित निज में मति रखते ॥

१५/१४७

भोक्ता हो या भोग्य रहा हो दोनों मिटने क्षण, क्षण से,
इसीलिये ना इच्छित कोई भोगा जाता तन मन से।
विराग झरना जिस जीवन में झर झर कर झरता है,
विषय राग की इच्छा किस विध ज्ञानी मुनि फिर करता है ॥

---
१. जागृत

१६

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं कर्मरागरसरिक्ततयैति ।
रङ्गयुक्तिरकषायितवस्त्रे स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥

१७

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्सर्वरागरसवर्ज्जनशीलः ।
लिप्यते सकलकर्मभिरेषः कर्म्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥

१८

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः ।
कर्त्तुं नैष कथंचनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते ।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेत् ज्ञानं भवेत्सन्ततम्
ज्ञानिन् भुङ्क्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव ॥

१९

ज्ञानिन् कर्म्म न जातु कर्त्तुमुचितं किञ्चित्तथाप्युच्यते
भुङ्क्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः ।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ॥

२०

कर्त्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः ।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥

१६/१४८

विषय राग के रसिक नहीं मुनि ज्ञानी नित निज रस चखते,
विग्रह मूल परिग्रह ही है भाव परिग्रह नहिं रखते।
रंग लगाओ वसन रंगेगा किन्तु रंग झट उड़ सकता,
हल्दी फिटकरि लगे बिना ही गाढ़ रंग कब-चढ़ सकता॥

१७/१४९

विषय विषय विष, ज्ञानी जन न कभी भूल कर भी पीते,
निज रस समरस सहर्ष पीते पावन जीवन ही जीते।
कर्म कीच के बीच रहे यति परन्तु उससे ना लिपते,
राग द्वेषी गृही असंयत पाप पंक से पर लिपते॥

१८/१५०

जिसका जिस विध स्वभाव हो, हो उसका तिस विध अपनापन,
उसमें अन्तर किस विध फिर हम ला सकते है अधुनापन।
अज्ञ रहा वह विज्ञ न होना ज्ञान कभी अज्ञान नहीं,
भोगो ज्ञानिन्! पर-वश विषयों तज रति, विधि बंधान नहीं॥

१९/१५१

पर मम कुछ ना कहता पर तू भोग भोगता हूँ कहता,
वितथ भोगता तव ए! ज्ञानी भोग बुरा क्यों दुख सहता
भोगत "बंध" न हो यदि कहता भोगेच्छा क्या है मन में?
ज्ञान लीन बन नहि तो!! रति वश जकड़ेगा विधि बन्धन में॥

२०/१५२

कर्त्ता को विधि बल पूर्वक ना कभी निजी फल देता है,
कर्त्ता विधि फल-चखना चाहे खुद विधिफल चख लेता है।
विधि को कर भी मुनि! विधि फल को तजता परता सब जड़ता,
विधि फल में ना रचता पचता ना बन्धन में तब पड़ता॥

२१

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत् ।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः ।।

२२

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि ।
सर्वमेव निसर्गनिर्भयतया शङ्कां विहाय स्वयं
जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधच्च्यवन्ते न हि[1] ।।

२३

लोकः शाश्वत एष एक सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः ।
लोको यन्न तवापरस्तदपरस्तस्यास्तितद्भीः कुतो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।।

२४

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः ।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।।

२५

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः ।
अस्यात्राणमतो न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।।

---

१. ते इत्यपि पाठः

२१/१५३

विधि फल में तज भी विधि करते मुनि इस विधि हमना हैं कहते,
परन्तु पर वश विधि वश कुछ कुछ विधि आ गिरते हैं रहते !
कौन कहें विधि ज्ञानी करते जब या रहते अमल बने,
आ आ गिरते विधि रहते निज-ज्ञान भाव में अचल तने ।।

२२/१५४

वज्र पात भी मुनि पर हो पर घर दृढ़ दृग धृति जपता है,
जब कि जगत यह कायर भय से पीड़ित कप कप कपता है ।
आत्म बोध से चिगता नहिं है, ज्ञान धाम निज लखता है,
निसर्ग निर्भय निसंग वन कर भय ना उर में रखता है ।।

२३/१५५

एक लोक है विरत आत्मा का चेतन जो है शाश्वत है,
उसी लोक को ज्ञानी केवल लखता विकसित भास्वत हैं ।
चिन्मय मम है लोक किन्तु यह पर है पर से डर कैसा,
निशंक मुनि अनुभवता तब बस स्वयं ज्ञान बन कर ऐसा ।।

२४/१५६

भेद-रहित निज सुवेद्य वेदक-बल से केवल संवेदन,
विराग मन से आस्वादित हो अचल ज्ञान मय इक चेतन ।
परकृत परिवेदन पीड़न से ज्ञानी को फिर डर कैसा ?
सहज ज्ञान को स्वयं सुनिर्भय अनुभवता मुनिवर ऐसा ।।

२५/१५७

जो भी सत् है वह ना मिटता स्पष्ट वस्तु की यह गाथा,
ज्ञान स्वयं सत् रहा कौन फिर उसका पर हो तब भाता ?
अतः अरक्षाकृत भय ज्ञानी जन को होगा फिर कैसा ?
सहज ज्ञान को स्वयं सुनिर्भय अनुभवता मुनिवर ऐसा ।।

२६

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपेण य-
च्छक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः ।
अस्या गुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।।

२७

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ।
तस्यातो मरणं न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।।

२८

एकं ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।
तन्नाकस्मिकमत्र किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।।

२९

टङ्कोत्कीर्ण स्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म ।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक् कर्म्मणो नास्ति बन्धः
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्ज्जरैव ।।

३०

रुन्धन्बधं नवमिति निजैः सङ्गतोऽष्टाभिरङ्गैः
प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन्निर्ज्जरोज्जृम्भणेन ।
सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्तं
ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरङ्गं विगाह्य ।।

इति निर्ज्जरा निष्क्रान्ता * ७ *

२६/१५८

वस्तु रूप ही गुप्ति रही बस उसमें नहिं पर घुसता है,
उसी तरह वह ज्ञान सुधी का स्वरूप सुख कर लसता है।
अतः अगुप्ति न ज्ञानी जन को हो फिर किस से डर कैसा,
सहज ज्ञान को स्वयं सुनिर्भय अनुभवता मुनिवर ऐसा ॥

२७/१५९

प्राणों का हो कण कण खिरना मरण नाम बस वह पाता,
ज्ञानी का पर ज्ञान न नश्वर कभी नहीं मिट यह जाता।
मरण नहीं निज आतम का है अतः मरण से डर कैसा ?
सहज ज्ञान को स्वयं सुनिर्भय अनुभवता मुनिवर ऐसा ॥

२८/१६०

आदि अन्त से रहित अचल है एक ज्ञानी है उचित सही,
आप स्वतः है जब तक तब तक उसमें पर हो उदित नहीं।
आकस्मिक निज में ना कुछ हो फिर तब उससे डर कैसा ?
सहज ज्ञान को स्वयं सुनिर्भय अनुभवता मुनिवर ऐसा ॥

२९/१६१

समरस पूरित शुद्ध बोध का पावन भाजन बन जाता,
विराग दृग धारक विधि नाशक दृष्टि अंग वसु धन पाता।
इस विध परिणति जब हो मुनि की पर परिणति की गंध न हो,
पूर्व उपार्जित कर्म निर्जरा भोगत भी विधि बन्धन न हो ॥

३०/१६२

अष्ट अंग दृग संग सम्भाले नव्य कर्म का कर संवर,
बद्ध कर्म को जर, जर कर क्षय करते तज मुनिवर अम्बर।
आदि अन्त से रहित ज्ञान बन स्वयं मुदित हो दृग धारी,
तीन लोक के रंग मंच पर नाच रहा है अघहारी ॥

इति निर्जराधिकारः समाप्त

— दोहा —

साक्षी बन कर विषय का करते मुनिवर भोग।
पूर्ण-कर्म की निर्जरा हो तब शुचि उपयोग ॥

बंध किये बिन बंध का बंधन टूटे आप।
महिमा यह सब साम्य की विराग दृग की छाप ॥

अथ बन्धः प्रविशति

१

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जग-
त्क्रीडन्तं रसभारनिर्भरमहानाट्येन बन्धं धुनत् ।
आनन्दामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुटन्नाट्य-
द्धीरोदारमनाकुलं निरुपधिज्ञानं समुन्मज्जति ॥

२

न कर्म्मबहुलं जगन्नचलनात्मकं कर्म्मवा
ननेककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत् ।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम् ॥

३

लोकः कर्म्म ततोऽस्तु सोऽस्तु च परिस्पन्दात्मकं कर्म्मत-
त्तान्यस्मिन् करणानि सन्तु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत् ।
रागादीनुपयोगभूमिमनयद् ज्ञानं भवेत् केवलं
बन्धं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवं ॥

४

तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां
तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः ।
अकामकृतकर्म्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां
द्वयं न हि विरुद्धयते किम करोति जानाति च ॥

५

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु
जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः ।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहु-
र्मिथ्यादृशः स नियतंस च बन्धहेतुः ॥

१/१६३

बन्ध तत्त्व यह राग मद्य को घुला घुला कर पिला पिला,
सकल विश्व को मत्त बनाकर खेल रहा था खुला खुला।
धीर निराकुल उदार मानस ज्ञान सहजता जगा रहा,
चिदानन्दमय रस पीकर अब बन्ध तत्त्व को भगा रहा ॥

२/१६४

सचित अचित का बध नहिं विधि के बंध हेतु ना इन्द्रियगण,
भरा जगत भी विधि से नहिं है चंचलतम भी "मन वच तन"।
राग रंग में रचता पचता रागी का उपयोग रहा,
केवल कारण विधि बन्धन का यों कहते मुनि लोग अहा ॥

१/३६५

यदपि भले ही इन्द्रियगण हो चिदचित् वध हो क्षण-क्षण हो,
जग हो विधि से भरा रहा औ' चंचलतर ये तन मन हो।
राग रंग से रंजित करता यदि नहिं शुचि उपयोगन को,
निश्चय विराग दृग धारक मुनि पाता नहिं विधि-योगन को ॥

४/१६६

परन्तु ज्ञानी मुनि को बनना स्वेच्छाचारी उचित नहीं,
उच्छृंखलपन बन्ध धाम है आतम ज्ञान हो उदित नहीं।
इच्छा करना तथा जानना युगपत दो ये नहि बनते,
बिना राग के कार्य अतः हो मुनि के नहिं तो ! विधि तनते ॥

५/१६७

जो मुनि निज को जान रहा है वह ना करता विधि बन्धन,
जो विधि करता नहि निज लखता यही राग का अनुरंजन।
राग रहा है अबोधमय ही अध्यवसायन का आलय,
मिथ्या दर्शन बन्ध हेतु वह जिन वाणी का यह आशय ॥

६

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।।

७

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य
पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
कर्म्माण्यहङ्कृतिरसेन चिकीर्णवस्ते
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ।।

८

मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बन्धहेतुर्विपर्य्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ।।

९

अनेनाध्यवसायेन निःफलेन विमोहितः
तत्किञ्चनापि नैवाऽस्ति नात्माऽऽत्मानं करोति यत् ।।

१०

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावादात्मानमात्मा विदधाति विश्वम् ।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष नास्तीह येषां यतयस्त एव ।।

६/१६८

नियत रहे हैं सभी जगत में सुख दुख मृतिभय जनना रे।
अपने अपने कर्म-पाक वश पाते जग जन तनधारे।
सुख दुख देता पर को जीवित करता मैं निज के बल से,
तेरा कहना भूल रही यह फलतः बंचित केवल से॥

७/१६९

पर से जीवन जीता जग है सुख दुख पाता मरता है,
इस विधि जड़ हो कहता रहता मूढ़ पना बस धरता है।
वसु विधि विधि को करता फलतः अहंकार मद पीता है,
मिथ्यादृष्टी निजघातक है दानव जीवन जीता है॥

८/१७०

जग के पोषण पोषण का यह मिथ्यादृष्टी का आशय,
बोध विनाशक नियम रूप से अबोध-तम तम का आलय।
कारण ! उसका आशय निश्चित भ्रम है भ्रम का कारण है,
दुखद विविध वसुविध-विधि के बस, बन्धन है असु मारण है॥

९/१७१

दुखमय अध्यवसायन कर कर निज अनुभव से स्खलित हुआ,
दीन हीन गति हीन हुआ है समोहित है भ्रमित हुआ।
मोही प्राणी सबको अपना कहता रहता भूल रहा,
इसलिए वह इन्द्रिय विषयों में निशिदिन जो भूल रहा॥

१०/१७२

सकल विश्व से पृथक रहा वो यद्यपि आत्मा अपना है,
तथापि पर को अपना कहता करता मोही सपना है।
अध्यवसायन दल यह केवल मोह मूल ही है इसका,
स्वप्न दशा में भी ना यतिवर आश्रय लेते हैं जिसका॥

११

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ।
सम्यग्निश्चयमेकमेव तदमी नि.कम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति संतो धृतिम् ।।

१२

रागादयो बन्धनिदानमुक्तास्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः
आत्मा परो वा किमुतन्निमित्तमिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ।।

१३

न जातुरागादिनिमित्तभावमात्माऽऽत्मनो याति यथार्ककान्तः
तस्मिन्निमित्तं परसङ्ग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ।।

१४

इति वस्तु स्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः
रागादीन्नात्मनः कुर्यान्नातो भवति कारकः ।।

१५

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः ।
रागादीनात्मनः कुर्यादतो भवति कारकः ।।

११/१७३

अध्यवसायन को कहते जिन त्याज्य त्याज्य बस निस्सारा,
जिसका आशय मैं लेता बस छुड़वाया सब व्यवहारा।
शुद्ध ज्ञान धन में धृति फिर भी क्यों ना धारण करते हैं,
निश्चल बन मुनि निज छवि में नहिं हा ! क्या कारण चरते हैं ॥

१२/१७४

शुचिमय चेतन से हैं न्यारे रागादिक अद्य ये सारे,
वसु विध विधि के बन्धन कारण यह तुम मत जिन ! ए प्यारे।
रागादिक का पर क्या कारण पर है अथवा आतम है,
इस विधि शंका यदि जन करते कहते तब परमातम है ॥

१३/१७५

रागादिक कालुष परिणतियां यद्यपि आतम में होतीं,
स्वभाव से पर वे ना होतीं विधि के निमित्त वश होतीं।
मोह पाक ही उसमें कारण वस्तु तत्त्व यह उचित रहा,
सूर्य बिम्ब वश सूर्यकान्तमणि से ज्यों अगनी उदित अहा ॥

१४/१७६

इस विधि पर की बिना अपेक्षा वस्तु तत्व का अवलोकन,
सहज स्वयं ही ज्ञानी मुनिजन करते पर का कर मोचन।
रागादिक से अतः स्वयं को करते नही कलंकित हैं,
कर्त्ता कारक बनते नहिं हैं फलतः सदा अशंकित हैं ॥

१५/१७७

वस्तु तत्व का रूप कभी ना जिनके दृग में अंकित हैं,
अज्ञानी वे कहलाते हैं निज के सुख से वंचित हैं।
रागादिक से अतः स्वयं को करते सदा-कलंकित हैं,
कर्त्ता कारक बनते नहि हैं फलतः पामर शंकित हैं ॥

१६

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बला-
त्तन्मूलां बहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम्
येनोन्मूलितबन्ध एव भगवानात्माऽऽत्मनि स्फूर्जति ॥

१७

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां
कार्य्यं बन्धं विविधमधुना सद्यएव प्रणुद्य ।
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेत
त्तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्यावृणोति ॥

इति बन्धो निष्क्रान्तः * ८ *

१६/१७८

इस विध विचार विविध विकल्पों को तजने निज भजते हैं,
राग भाव का मूल परिग्रह मुनिवर जिसको तजते हैं।
निजी निरामय संवेदन से भरित आतम को पाते हैं,
बन्ध मुक्त बन भगवन अपने में तब आप सुहाते हैं।।

१७/१७९

बहु विध-वसुविध राग कार्य-विधि बंध मिटा बन निरा अदय,
विधि बन्धन के कारण जिनको रागादिक के मिटा उदय,
भ्रम-तम-तम को तथा भगाता ज्ञान भानु अब उदित हुआ
जिसके बल को रोक सकेगा कोई ना यह विदित हुआ ।।

इति बन्धाधिकारः समाप्त

— दोहा —

मात्र कर्म के उदय से नहि वसुविध-विधि-बंध ।
रागादिक ही नियम से बंध-हेतु-सुन-अंध ।।

बन्ध तत्व का ज्ञान ही केवल मोक्ष न देत ।
मोह त्याग ही मोक्ष का साक्षात स्वाश्रित हेतु ।।

अथ मोक्षः प्रविशति

१

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बन्धपुरुषौ
नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतं ।
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानन्द सरसं
परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकल कृत्यं विजयते ॥

२

प्रज्ञाच्छेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः
सूक्ष्मेऽन्तः सन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य ।
आत्मानं मग्नमन्तः स्थिर विशदलसद्धाम्नि चैतन्य पूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ॥

३

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षण बलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते
चिन्मुद्रांकित निर्विभागमहिमाशुद्धश्चिदेवास्म्यहम् ।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्तां न भिदाऽस्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥

४

अद्वैताऽपि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्ति रूपंत्यजे-
त्तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जड़ता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतंदृग्ज्ञाप्ति रुपास्तु चित् ॥

५

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषाम् ।
ग्राह्य स्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥

१/१८०

भिन्न भिन्न कर बन्ध पुरुष को प्रज्ञामय उस आरे से,
बिठा पुरुष को मोक्ष धाम में उठा भवार्णव-खारे से ।।
परम सहज निज चिदानन्दमय-रस से पूरित झील अहो,
सकल कार्य कर विराम पाया ज्ञान सदा जय शील रहो ।।

२/१८१

आत्म कर्म की सूक्ष्म संधि में प्रमाद तज जब मुनि झटके,
प्रज्ञावाली पैनी छैनी पूर्ण लगाकर बल पटके ।
अबोध-विभाव में विधि, शुचि-ध्रुव चेतन में निज आतम को,
स्थापित करती भिन्न भिन्न कर करे दूर वह हा ! तम को ।।

३/१८२

जो कुछ भिदने योग्य रहा था उसे भेद निज लक्षण से,
अविभागी निज चेतन शाला नित ध्याऊँ मैं क्षण क्षण से ।
कारक गुण धर्मादिल से मुझ में भले हि कुछ भेद रहे,
तथापि शुचिमय विभुमय चिति में भेद नहीं गत भेद रहे ।।

४/१८३

अभेद होकर भी यदि चेतन तजता दर्शन-ज्ञान मनो,
समान विशेष नहिं रह पाते तजता निज को तभी सुनो ।
निजको तजता भजता जड़ता बिना व्याप्य व्यापक चेतन,
होगा विनष्ट अतः नियम से आत्म ज्ञान दृग का केतन ।।

५/१८४

एक भाव वह द्युतिमय चिन्मय चेतन का नित लसता है,
किन्तु भाव सब पर के पर हैं तू क्यों उनमें फसता है ।
उपादेय है ज्ञेय देय है केवल चेतन-भाव सदा,
भाव हेय है पर के सारे सुखद-अचेतन भाव कदा ।।

६

सिद्धान्तऽयमुदात्तचित्त चरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं जयोतिः सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विबुधाभावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नाऽस्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ।।

७

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बद्धयेतैवापराधवान् ।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनि. ।।

८

अनवरतमनन्तैर्बध्यते सापराधः
स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु ।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो
भवति निरपराधः साधुशुद्धात्मसेवी ।।

९

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां
प्रलीनं चापलमुन्मूलितमालम्बनमात्म-
न्येवालानितं च चित्तमा-
संपूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ।।

१०

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतम्
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः
किं नोद्र्ध्वमूद्र्ध्व-मधिरोहति निःप्रमादः ।।

६/१८५

जिन की मन की परिणति उजली मोक्षार्थी वे आराधे,
छविमय द्युतिमय एक आपको शुचितम करके शिव साधे।
त्रिविध भाव है जो कुछ लसते मुझसे विभिन्न पन धारे,
मैं बस चेतन ज्ञान निकेतन ये पर सारे हैं खारे॥

७/१८६

जडमय पुद्गल पदार्थ दल का पर का संग्रह करता है,
वसु विध विधि से अपराधी वह बंधता विग्रह धरता है।
निरपराध मुनि विराग बन के निज में रमता भज संवर,
बंधता कदापि ना वो विधि से निज को नमता तज अंबर॥

८/१८७

मलिन भाव कर अपराधी मुनि अविरल निश्चित विधिपाता,
विधि से बँधता निरपराध नहिं यति वर निजकी निधि पाता।
शुद्धातम की सेवा करता निरपराध मुनि कहलाता,
रागात्मा को भजने वाला सापराध बन दुख पाता॥

९/१८८

विलासतामय जीवन जीते प्रमत्त जन को धिक्कारा,
क्रिया काण्ड को छुड़ा मिटाया चंचलतम मन की धारा।
शुद्ध ज्ञान धन की उपलब्धी जीवन में नहिं हो जब लौं,
निश्चित निज में उनको गुरु ने विलीन करवाया तब लौ॥

१०/१८९

प्रतिक्रमण ही विष है खारा जाया जिसने जब ऐसा,
अप्रतिक्रमण सुधासरस हो सकता सुखकर तब कैसा ?
बार बार कर प्रमाद फिर भी नीचे नीचे गिरते हो,
क्यों ना ऊपर ऊपर उठते प्रमाद पीछे फिरते हो॥

११

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः ।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाचिरात् ॥

१२

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं
स्वद्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः ।
बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥

१३

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत-
न्नित्योद्योतस्फुटित सहजावस्थमेकान्तशुद्धम् ।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ॥

[इति मोक्षो निष्क्रान्तः * ६ *

११/१६०

प्रमाद मिश्रितभाव प्रणाली शुद्धभाव नहिं वह साता
काषायरंजित पूर्ण रहा है अलस-भाव है कहलाता।
सरस स्वरस परि-पूरित निजके स्वभाव में मुनिरत होवे,
फलतः पावन शुचिता पावें शिव को, पर अविरत रोवें ॥

१२/१६१

विकृत विभावों के कारण पर द्रव्यन को बस तजता है,
रुचि लेता निज पदार्थ में मुनि पर को कभी भजता है,
तोड़ तोड़ कर वसु-विध बंधन पाप-पंक को धोता है,
चेतन जल से पूरित सर में स्नपित पूर्ण शुचि होता है ॥

१३/१६२

अतुल्य अव्यय शिवपद को वह पूर्ण ज्ञान पा राग उठा,
जग मग जग मग करता निज को सहज दशा में जाग उठा।
केवल-केवल[1] रस से पूरित नीर-राशि सम गंभीरा
ज्योति-धाम निज ओज तेज से अगम अमित तम समधीरा ॥

इति मोक्षाधिकारः समाप्त

— दोहा —

वसु विध विधि का विलयमय निलय रूप का मोक्ष।
व्यक्त-रूप है सिद्ध में तुझ में वही परोक्ष ॥

दृग व्रत-समता धार के द्रव्य-भव्य भज आप।
निरा निरामय आत्म हो रूप द्रव्य तज ताप ॥

१. केवल ज्ञान

अथ सर्व विशुद्धिज्ञानाधिकारः

१

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान्कर्तृ भोक्त्रादि भावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्ष प्रक्लृप्तेः ।
शुद्धः शुद्धस्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टङ्कोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जतिज्ञानपुञ्जः ॥

२

कर्त्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् ।
अज्ञानादेव कर्त्ताऽयं तदभावादकारकः ॥

३

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगवनः ।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
सखल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥

४

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्त्तृत्ववच्चितः ।
अज्ञानादेव भोक्ताऽयं तदभावादवेदकः ॥

५

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यता
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥

१/१६३

कर्त्तृ-भोक्तृमय विभाव भावों घटा, मिटा अघ अजन से,
दूर रहा है, पद पद पल पल बंध मोक्ष के रंजन से।
अचल प्रकट तम महिमाधारी ज्ञान पुंज दृग मंजु सही,
शुद्ध शुद्धतम विशुद्ध शोभित स्वरस पूर्ण द्युति पुण्यमही ॥

२/१६४

जैसा चेतन आतम का निज संवेदन निज भाव रहा,
वैसा कर्त्तापन आतम का होता नहिं पर-भाव रहा।
मूढ़पना वश कर्त्ता आतमा विषयी मोही अज्ञानी,
मिटा मूढ़पन कर्त्ता नहि हो मुनिवर निर्मोही ज्ञानी ॥

३/१६५

यदपि स्वरस से भरा जीव है विदित हुवा नहिं कर्त्ता है,
तीन लोक में फैल रहा है ले शुचि-चिति द्युति शिव धर्त्ता है।
तदपि मूढ़ता की कोई है महिमा सघनाऽगम न्यारी,
इसलिये विध बंधन होता दुखकारी, सुख शम हारी ॥

४/१६६

जैसा कर्त्तापन आतम का होता नहिं निज भाव रहा,
वैसा होता चेतन का नहि भोक्तापन भी भाव रहा।
मूढ़पना वश भोक्ता आतमन विषयी मोही अज्ञानी
उसे नाश कर सुधी अवेदक मुनि हो निर्मोही ज्ञानी ॥

५/१६७

अज्ञानी विधि फल में रमता निश्चित विधि का वेदक है,
ज्ञानी विधि में रमता नहिं है वेदक ना निज वेदक है॥
इस विध विचार मुनिगण तुम को मूढ़पना बस तजना है,
ज्ञान-पने के शुद्ध तेज में निज में निज को भजना है ॥

६

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावं ।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा-
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥

७

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा ततः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ॥

८

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः पर द्रव्यात्मतत्त्वयोः ।
कर्त्तृकर्म्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्त्तृता कुतः ॥

९

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्द्ध
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः ।
तत्कर्त्तृकर्म्मघटनाऽस्ति न वस्तुभेदे
पश्यन्त्वकर्त्तृमुनयश्च जनाः स्वतत्त्वं ॥

१०

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेम-
मज्ञानमग्नमहसो बत ते वराकाः ।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म-
कर्त्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ॥

६/१६८

ज्ञान विराग मुनि नहिं विधि का करता वेदन विधि करता,
केवल विधिवत् विधि का विधिपन जाने गुण कारिधि करता।
कर्त्तापन वेदनपन को तज केवल साक्षी रह जाता,
शुचितम स्वभाव रत होने से कर्म मुक्त ही कहलाता ॥

७/१६६

निज को पर का कर्त्ता लखते पर में मुनि जो अटक रहें,
मोहमयी अति घनी निशा में इधर उधर वे भटक रहें।
यदपि मोक्ष की आशा रखते तदपि सदाभव दुःख पाते,
साधारण जनता सम वे भी नहिं अक्षय शिव सुख पाते ॥

८/२००

आत्म-तत्व और अन्य तत्व ये स्वतन्त्र स्वतन्त्र रहते हैं,
एक मेक हो आपस में मिल प्रवाह बनना बहते हैं।
कर्तृ-कर्म सम्बन्ध सिद्ध वह इस विध जब ना होता है,
फिर किस विध पर कर्तृ कर्मपन हो, क्यों फिर तू रोता है ॥

९/२०१

सभी तरह सम्बन्ध निषेधित करते जग के नाथ सभी,।
सम्बन्ध न हो एक वस्तु का अन्य वस्तु के साथ कभी।
वस्तु भेद होने से फिर क्या कर्तृ कर्म की दशा रही,
निज के अकर्तृपन मुनि फलतः लखते, अब ना निशा रही ॥

१०/२०२

ज्ञान तेज अज्ञान भाव में ढला खेद जिनका तातें,
निज पर स्वभाव तो ना जाने पागल पामर कहलाते।
मूढ़कर्म वे करते फलतः लखते निज चैतन्य नहीं,
भाव कर्म का कर्त्ता चेतन अतः स्वयं है अन्य नहीं ॥

११

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गात्कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥

१२

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्त्तात्मैष कथंचिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥

१३

मा कर्त्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं साङ्ख्या इवाप्यार्हताः
कर्त्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादधः।
ऊर्द्ध्वं तूद्धतबोधधाम नियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥

१४

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं
निजमनसि विधत्ते कर्त्तृभोक्त्रोर्विभेदम्।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः
स्वयमयमभिषिञ्चंश्चिच्चमत्कार एव।

१५

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्।
अन्यः करोति भुङ्क्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥

११/२०३

कर्म कार्य जब किया हुआ पर जीव प्रकृति का कार्य नहीं,
अज्ञ प्रकृति भी स्वकार्य फल को भोगे तब अनिवार्य सही।
मात्र प्रकृति का भी न अचेतन प्रकृति! जीव ही कर्ता है,
भाव कर्म यों चेतनमय है, पुद्‌गल ज्ञान न धरता है॥

१२/२०४

मात्र कर्म "कर्त्ता" यों कहता निज कर्त्तापन छिपा रहा,
कथंचिदात्मा "कर्त्ता" कहती जिन श्रुति को ही मिटा रहा।
उस निज घातक की लघु धी को महा मोह से मुंदी हुई,
विशुद्ध करने अनेकान्तमय वस्तु स्थिती यह कही गई॥

१३/२०५

लखे अकर्त्ता मय निज को नहिं जैन[1] सांख्य[2] सम ये तब लौं,
कर्त्ता मय ही लखे सदा शुचि-भेद ज्ञान नहिं हो जब लौं।
विराग जब मुनि तीन गुप्ति में लीन, समिति में नहिं भ्रमते,
कर्तृ भाव से रहित पुरुष के बोध-धाम में तब रमते॥

१४/२०६

कर्त्ता भोक्ता भिन्न भिन्न हैं आत्म तत्त्व जब क्षणिक रहा,
इस विध कहना सुगत उपासक जिसमें बोध, न तनिक रहा।
चेतन का सुचि चमत्कार ही उसके भ्रम को विनाशता,
सरस सुधारस से सिंचन कर मुकुलित कलिका विकासता।

१५/२०७

अंश भेद ये पल पल मिटते अंशी से अति पृथक रहे,
अतः विनश्वर अंशी है हम वस्तु तत्त्व के अथक रहें।
विधि का कर्त्ता अतः अन्य है विधि का भोक्ता अन्य रहा,
इस विधि एकान्ती मत, तुम तुम धरो जिन मत वन्द्य महा॥

---

१. आर्हत् दर्शन
२. सांख्य दर्शन

१६

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः ।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥

१७

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव सञ्चिन्त्यतां ।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्येव नः ॥

१८

व्यावहारिकदृशैव केवलं कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते ।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥

१९

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरं ।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥

२०

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरोऽपरस्य कः किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥

१६/२०८

शुचितम निजको लखने वाले अति-व्याप्ति मल जान रहें !
काल उपाधी वश आतम में अधिक अशुचिपन मान रहे !
सूत्र ऋजु नया, श्रय ले चिति को क्षणिक मान आतम त्यागा,
बौद्धो ने मणि स्वीकारा पर त्यागी माला बिन धागा ॥

१७/२०९

कर्त्ता भोक्ता में विधि वश हो अन्तर या ना किंचन हो,
कर्त्ता भोक्ता हो या ना हो चेतन का पर चिन्तन हो।
माला में ज्यों मणियाँ गुँथो चिति चिन्तामणि आतम में,
पृथक उन्हें कर कौन लखेगा शोभित जो मम आतम में ॥

१८/२१०

व्यवहारी प्राणीदृग की ही केवल यह है विशेषता,
कर्तृ कर्म ये भिन्न भिन्न ही यहाँ झलकते अशेषता।
निश्चय नय का विषय भूत उस विरागता का ले आश्रय,
मुनि जब लखता निजको भेद न अभेद दिखता सुख आलय ॥

१९/२११

आश्रय, आश्रय दाता क्रमशः सुपरिणाम परिणामी है,
अतः कर्म परिणाम उसी का परिणामी वह स्वामी है।
कर्त्ता के बिन कर्म न पदार्थ दोनों का वह भर्त्ता है,
वस्तु स्थिति है निज परिणामों का निज ही बस वह कर्ता है ॥

२०/२२१

अमिट अमित-द्युति बल ले चेतन जग में बिहार करता है,
किन्तु किसी में वह ना मिलता यों मुनि विचार करता है।
यदपि वस्तुएँ परिणमती हैं अपने अपने भावों से,
तदपि वृथा क्यों व्यथित मूढ़ है स्वभाव तज अन्य भावों से ॥

२१

यस्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम् ।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥

२२

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित् ।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः ॥

२३

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्द्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः ।
ज्योत्स्नारूपं स्नापयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥

२४

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यं ।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन्येन पूर्णस्वभावः ॥

२५

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावा-
त्तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित्
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटन्त
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्च्चिः ॥

२१/२१३

एक वस्तु वह अन्य वस्तु की नहीं बनेगी गुरु गाता,
वस्तु सदा बस वस्तु रहेगी वस्तु तत्व की यह गाथा।
इस विध जब यह सिद्ध हुआ पर परका फिर क्या कर सकता,
एक स्थान पर रहो भले ही मिलकर रहना चल सकता ॥

२२/२१४

अन्य वस्तु के परिणामों में पदार्थ निमित्त बनता है,
पदार्थ परिणामी परिणमता पर कर्त्ता नहिं बनता है।
अन्य वस्तु का अन्य वस्तु है करती इस विध जो कहना,
व्यवहारी जन की वह दृष्टी निश्चय से तुम ना गहना ॥

२३/२१५

निज अनुभवता शुद्ध द्रव्य मुनि लखने में जब तत्पर हो,
एक द्रव्य बस बिलसित होता, नहीं प्रकाशित तब पर हो।
ज्ञेय ज्ञान में तदपि / झलकते ज्ञान बना जब शुचि दर्पण,
किन्तु मूढ़ तू पर में रमता निजपन पर में कर अर्पण ॥

२४/२१६

शुद्ध आतम की स्वरस चेतना ज्ञानमयी वह जभी मिली,
विषय विषैली रहे भले पर पृथक पड़ी पर सभी गिरी।
धवलित भूतल करती किरणें शशि की "भूमय" नहिं होती,
ज्ञान ज्ञेय को जान "ज्ञेय मय" नहिं हो यह शुचिमय ज्योती ॥

२५/२१७

ज्ञान ज्ञान बन, ज्ञेय निजी को बना, न जब तक शोभित हो,
राग रोष ये उठते उरमें आतम जब तक मोहित हो।
मूढ़ पने को पूर्ण हटा कर ज्ञान, ज्ञान बन पाता है,
अभाव भावों हुए मिटा कर पूर्ण स्वभाव भाता है ॥

२६

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्टया नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि ।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्ताऽत्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ॥

२७

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र ।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्प्पत्य बोधो
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥

२८

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति येतुते ।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः ॥

२९

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोद्धा न बोध्यादयं
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाशादिव ।
तद्वस्तुस्थितिबोधबन्धधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ॥

३०

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्त कर्म्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात् ।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिष्मयीं
विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनां ॥

२६/२१८

मूढ़पने में ढला ज्ञान ही राग रोष है कहलाता,
समाधिरत मुनि रागादिक को तभी नहीं कर वह पाता।
विराग दृग पा रागादिक का तत्त्व दृष्टि से नाश करो,
सहज प्रकट शुचि ज्ञान ज्योति हो, मोक्ष धाम में वास करो ॥

२७/२१९

रागादिक कालुषभावों का पर-पदार्थ नहिं कारण है,
तत्त्व दृष्टि से जब मुनि लखते अवगम हो अघमारण है।
समय समय पर पदार्थ भर में जो कुछ उठना मिटना है,
अपने अपने स्वभाव-वश ही समझ जरा तू इतना है ॥

२८/२२०

मानस सरवर में यदि लहरें राग-रंग की उठती हैं,
पर को दूषण उसमें मत दो स्वतंत्र सत्ता लुटती हैं।
चेतन ही बस अपराधी है, बोध-हीन रति करता है,
बोध-धाम में सुविदित हो यह अबोध पल में टलता है ॥

२९/२२१

पर पदार्थ ही केवल कारण रागादिक के बनने में,
डरते नहिं हैं कतिपय विषयी जड़ जन इस विध कहने में।
डूबे निश्चित, कभी नहीं वे मोह सिन्धु को तिरते हैं,
वीतराग विज्ञान विकल बन भव भव दुख से घिरते है ॥

३०/२२२

परम विमल निश्चलतामय निजबोध धार पर से ज्ञानी,
दीप घटादिक से जिस विध ना विकृत प्रभावित मुनिध्यानी।
निज पर भेद ज्ञान बिन फिर भी राग रोष कर अज्ञानी,
वृथा व्यथा क्यों भजते, तजते समता, करते नादानी ॥

३१

ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं ।
अज्ञानसंचेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धि निरुणद्धि बन्धः ।।

३२

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः ।
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ।।

३३

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निःकर्मणि नित्यमात्मना वर्त्ते ।।

३४

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निःकर्मणि नित्यमात्मना वर्त्ते ।।

३५

प्रत्याख्यायभविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः ।
आत्मनि चैतन्यात्मनिनिः कर्मणि नित्यमात्मना वर्त्ते ।।

३१/२२३

राग रोष से रहित ज्योति घर नित निजपन को छूते हैं,
विगत अनागत कर्म मुक्त हैं कर्मोदय ना छूते हैं।
विरत पाप से, निरत निजी शुचि-चारित में हैं अति भाते,
निज रस से सिंचित करती जग "ज्ञान चेतना" यति पाते ॥

३२/२२४

ज्ञान चेतना करने से ही शुद्ध शुद्धतर बनता है,
पूर्ण प्रकाशित ज्ञान तभी हो बद्ध कर्म हर तनता है।
मूढ़पने के संचेतन से बोध विमलता नशती है,
तभी चेतना, नियमरूप से विधि बन्धन में फसती है ॥

३३/२२५

कृत से कारित अनुमोदन से तन से वच से औ मन से,
विगत अनागत आगत विषयों निकालता मैं चेतन से।
सकल क्रिया से विराम पाया निज चेतन का आलम्बन,
लेता विराग मुनि बन, तू भी अब तो कर तन मन स्वतम्बन ॥

३४/२२६

मैंने मोही बन व्रत में यदि अतिक्रमण का भाव किया,
मन वच तन से उसका विधिवत् प्रतिक्रमण का भाव लिया।
चेतन रस से भरा हुआ, सब क्रिया-रहित निज आतम में,
स्थिर होता स्थिर हो जा तू भी भ्रमता क्यों जड़ता-तम में ॥

३५/२२७

मोह भाव से अनुरंजित हो साम्प्रत कर्म क्रिया करता,
उनका भी मैं आलोचन कर दया भाव निज पै धरता।
चेतन रस से भरा हुआ-सब क्रिया रहित निज आतम में,
स्थिर होता, स्थिर हो जा ! तू भी भ्रमता क्यों जड़ता-तम में ॥

३६

समस्तमित्येवमपास्य कर्म त्रैकालिकं शुद्धनयावलम्बी।
विलीनमोहो रहितं विकारैश्चिन्मात्रमात्मानमथाऽवलम्बे ।।

३७

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव ।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानं ।।

३८

निःशेष कर्म्मफलसंन्यसनात्मनैवं
सर्वक्रियान्तरविहार निवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्य भजतो भृशमात्मतत्त्वं
कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ।।

३९

यः पूर्वभावकृतकर्म्मविषद्रुमाणां
भुंक्तेफलानि न खलु स्वत एव तृप्तः ।
आपातकाल रमणीयमुदर्करम्यं
निःकर्मशर्ममयमेति दशान्तरं सः ।।

४०

अत्यन्तं भावयित्वा विरतमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः ।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनांस्वां
सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिवन्तु ।

३६/२२८

बीत-मोह बन बीत राग बन निग्रह कर मन स्पंदन का,
प्रत्याख्यान करूँ मैं अब इस भावी विधि के बन्धन का।
चेतन रस से भरा हुआ सब क्रिया रहित निज आतम में,
स्थिर होता, स्थिर हो जा ! तू भी भ्रमता क्यों जड़ता-तम में ॥

३७/२२९

इस विध बहुविध विधि के दल को विगत अनागत आगत को,
तजकर करता भाग्य मानकर विशुद्ध नय के स्वागत को।
शशि सम शुचितम चेतन आतम-में बस निशिदिन रमता मैं,
निर्मोही बन निर्विकार बन केवल धरता समता मैं ॥

३८/२३०

मेरे विधि के विष-तरु में जो कटुविष फलदल लटक रहें,
सड़े गिरे वे बिना भोग के मन कहता ना निकट रहें।
फलत: निश्चल शैल सचेतन-शुचि आतम को अनुभवता,
इस विध विचार विराग मुनि में समय समय पर उद्भवता ॥

३९/२३१

अशेष वसुविध विधि के फल को पूर्ण उपेक्षित किया अभी
अन्य क्रिया तज निज आतम को मात्र अपेक्षित किया तभी
अमिट काल की परम्परा मम भजे निरन्तर चेतन को,
द्रुत गति से फिर बिहार कर ले सहज स्वयं शिव केतन को

४०/२३२

विधि-विष द्रुम को विगत काल में विभाव जल से सिंचा था,
पर अब उसके फल ना खा खा निज फल केवल सुख पाता।
सदा सेव्य है सुन्दरतम है मधुर मधुर तर है साता,
इस विध निज सुख क्रिया रहित है जिसके मुनिवर है पाता ॥

४१

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनाद्विनाकृतेरेकमना कुलं ज्वलत् ।
समस्तवस्तुव्यतिरेक निश्चयाद्विवेचितं ज्ञान मिहावतिष्ठते ।।

४२

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत् पृथक् वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम् ।
मध्याद्यन्तविभागमुक्त सहजस्फारप्रभाभासुरः
शुद्धज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ।।

४३

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथातमादेयमशेषतस्तत् ।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सन्धारणमात्मनीह ।।

४४

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितम् ।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शङ्क्यते ।।

४१/२३३

विधि से विधि फल से अविरति से विरत व्रती हो संयत हो,
विकृत चेतना पूर्ण मिटाकर संग रहित हो संगत हो।
ज्ञान चेतनामय निज रस से निज को पूरण भर जीवो,
परम प्रशम रस-सरस सुधारस है मुनि झट घट भर पीवो ॥

४२/२३४

ज्ञान ज्ञेय से ज्ञेय ज्ञान से तदपि प्रभावित होते हैं,
पर ये निज निज के कर्त्ता पर-के कदापि न होते हैं।
सकल वस्तुएं भिन्न भिन्न हैं ऐसा निश्चय जभी हुआ,
ज्ञान आप में पाप-ताप बिन उज्जवल निश्चल तभी हुआ ॥

४२/२३५

पर से न्यारा स्वयं संभारा धारा इस विध रूप निरा,
ग्रहण-त्याग-मय शील शून्य है अमल ज्ञान सुख कूप मिरा[1]।
आदि मध्य औ' अन्त रहित है जिसकी महिमा द्युतशाली,
शुद्ध ज्ञान-धन नित्य उदित है सहज विभामय सुख प्याली ॥

४३/२३६

निज आतम में निज आतम को जिसने स्थापित किया यमी,
कच्छप सम संकोचित इन्द्रिय पूर्ण रूप से किया दमी।
जो कुछ तजने योग्य रहा था उसको उसने त्याग दिया,
ग्राह्य जिसे झट ग्रहण किया, क्यों तूने पर राग किया ?

४४/२३७

स्वयं सुखाकर ज्ञान दिवाकर इस विध निश्चित प्रकट रहा,
सुचिर काल से पूर्ण रूप से-द्रव्यन से प्रथक रहा।
उत्तर दो अब ज्ञान हमारा आहारक फिर हो कैसा ?
जिससे तुम हो कहते रहते "काय ज्ञान का हो" ऐसा !!

१. मेरा

४५

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिङ्गं मोक्षकारणम् ॥

४६

दर्शनज्ञान चारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥

४७

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति।
तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं **समयस्य** सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥

४८

ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिङ्गे द्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुला लोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं **समयस्य सार**ममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते।

४९

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः।
तुषबोध विमुग्दबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तन्दुलम् ॥

४५/२३८

शशितम उज्जवल उज्जवलतर है निर्विकारतम ज्ञान महा,
इसीलिए जड़काय ज्ञान का हो नहिं सकता जान ग्रहा !
यथाजात ज्ञानी का केवल जड़तन ना शिव कारण हो,
उपादान कारण शिव का-मुनि-ज्ञान तरण ही तारण हो ।।

४६/२३९

ज्ञन चरित समदर्शन तीनों एकामेक घुल मिल जाना,
मोक्षमार्ग है यही समझ लो शिव सुख सम्मुख मिल जाना ।
यही सेव्य है यही पेय है उपादेय है ध्येय यही,
मुमुक्षु मुनि को अन्य सभी बस हेय रही या ज्ञेय रही ।।

४७/२४०

चरित ज्ञान-दृगमय ही शिव पथ, जिसमें जो यतिथितिपाता,
ध्यान उसी का करता चिंतन करता निशिदिन थुति साता ।
निज में विचरण करता पर से दूर सदा हो जीता है,
वही आर्य ! अनिवार्य मुनीश्वर "समयसार रस" पीता है ।।

४८/२४१

इस विधि पावन शिव फल दाता रत्नत्रय जो तजते हैं,
जड़ तन आश्रित यथा जात में केवल ममता भजते हैं ।
अनुपम अखण्ड ज्योति पिंड शुचि समयसार को नहिं लखते,
भले दिगम्बर बने रहें वे आत्म-बोध जब नहिं रखते ।।

४९/२४२

बाह्य क्रिया में उलझे रहते जड़तन उलटे लटके हैं,
भाग्यहीन वे उन्हें न दर्शन मिलते अन्तर्घट के हैं ।
जैसा तन्दुल बोध जिन्हें नहिं तुष का संग्रह करते हैं,
वैसा मोही आत्मज्ञान बिन तपा तपा तन मरते हैं ।।

५०

द्रव्यलिङ्गममकार मीलितैर्दृश्यते **समयसार** एव न ।
द्रव्यलिङ्गमिह यत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥

५१

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः ।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा-
न्न खलु **समयसारादुत्तरं** किञ्चिदस्ति ॥

५२

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम् ।
विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत् ॥

५३

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितं ।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥

इति सर्वविशुद्धिज्ञानाधिकारः * १० *

५०/२४३

देह नग्नता भर में केवल जो मुनि ममता रखते हैं,
समयसार को कभी नहीं वे धरके समता लखते हैं।
निमित्त शिव का देह नग्नता, पर-आश्रित है पुद्गल है,
किन्तु ज्ञान तो उपादान है, निज आश्रित है, सद्बल है।

५१/२४४

बस कर दो बहु विकल्प जल्पों से कुछ नहिं होने वाला,
परमारथ का अनुभव कर लो मानस-मल धोने वाला।
स्वरस-सरस भरपूर-पूर्ण-शुचि ज्ञान-विभा से भासुर है,
समयसार ही सार विश्व में जिस बिन आकुल आसुर[1] है ॥

५२/२४५

विश्वसार है विश्व सुलोचन अक्षय अक्षय सुखकारी,
समय-सारका का कथन यहाँ अब पूर्ण हो रहा दुखहारी।
शुद्ध ज्ञान-धन-मय जो शिव सुख पावन परमानन्दपना,
उसे यही बस दिला नशाता निश्चित मनका द्वंदपना।

५३/२४६

अचल स्वच्छ यह एक अखंडित निज संवेदन में आता,
किन ही बाधाओं से-बाधित हो न, अबाधित है भाता।
इस विध केवल ज्ञान निकेतन आत्म तत्त्व यह सिद्ध हुआ,
झुक झुक सविनय प्रणाम उसको करता यह मुनि शुद्ध हुआ ॥

इति सर्व विशुद्धज्ञानाधिकारः समाप्त

दोहा

ज्ञान दुःख का मूल है ज्ञान ही भव का कूल।
राग सहित प्रतिकूल है राग रहित अनुकूल ॥
चुन चुन इनमें उचित को अनुचित मत चुन भूल
समयसार का सार है निज बिन पर सब धूल ॥

---

१. देवों तक, अर्थात् समग्र संसार

१

अत्र स्याद्वादशुद्धयर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोऽपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ।।

२

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभव-
द्विश्रान्तं पररूप एव परितोज्ञानं पशोः सीदति ।
यत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्ण समुन्मज्जति ।।

३

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलंदृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते ।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुन-
र्विश्वाद्भिन्नम विश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ।।

४

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसद्
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति ।
एकद्रव्यतया सदाव्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसयन्-
नेकंज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ।।

५

ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय-
न्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति ।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतः क्षालितं
पर्य्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकान्तवित् ।।

१/२४७

उजल उजल स्याद्वाद-शुद्धि हो जो बुध को अतिभाती है,
वस्तु तत्त्व की सरल व्यवस्था इसीलिये की जाती है।
एक ज्ञान ही युगपत् होता उपाय उपेय किस विध है,
इसका भी कुछ विचार करते गुरुवर बुधजन इस विध है ॥

२/२४८

पशु सम एकान्ती का निश्चय ज्ञान पूर्णतः सोया है,
पर में उलझा हुआ सदा है निज बल को बस खोया है।
स्याद्वादी का यदपि ज्ञान वह सकलज्ञेय का है ज्ञाता
तदपि निजीपन तजता नहिं है स्वरस भरित ही है भाता ॥

३/२४९

देख जगत को "ज्ञान" समझकर एकान्ती बन मन मानो,
पशु सम स्वैरी विचरण करता ज्ञेय-लीन वह अज्ञानी।
जगत जगत में रहा निरा पर जगत[1] जानता स्याद्वादी,
जग में रहकर जग से न्यारा मुनिवर निज रस का स्वादी ॥

४/२५०

पर पदार्थ के ग्रहण भाव कर आग्रत पर प्रति-छवियों से,
ज्ञान-शक्ति अति निर्बल जिनकी जड़जन नशते पशुओं से।
अनेकान्त का ज्ञाता लखता ज्ञेय-भेद-भ्रम हरता है,
सतत् उदित पर एक ज्ञान का अबाध अनुभव करता है ॥

५/२५१

पर प्रति छवि से पंकिल चिति को इक विध शुचि करने मानी,
स्वपर प्रकाशक ज्ञान स्वतः पर उसे त्यागता अज्ञानी।
पर ज्ञेयों से चित्रित चिति को स्वतः शुद्धतम स्याद्वादी,
पर्यायों वश अनेकता बस चिति में लखता निज स्वादी ॥

---

१. जागृत रहते हुए

६

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिर पर द्रव्यास्तितावञ्चितः
स्वद्रव्यानवलोकमेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ॥

७

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः
स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति ।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां
जानन्निर्मल शुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥

८

भिन्नक्षेत्र निषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा
सीदत्येव बहिः पतन्तमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः ।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसःस्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनि खानबोध्यनियत व्यापारशक्तिर्भवन् ।

९

स्वक्षेत्रस्थितयेपृथगधिपर क्षेत्रस्थिरतार्थोज्झना-
त्तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान्सहार्थैर्वशन् ।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥

१०

पूर्वालम्बितबोध्यनाश समये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किञ्चनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः ।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥

६/२५२

निज का अवलोकन ना करता एकान्ती पशु मर मिटता,
पूर्ण प्रकट स्थिर पर को लखता मुग्ध हुआ पर में पिटता।
स्याद्वादी निज अवलोकन से पूरण-जीवन जीता है,
शुद्ध-बोध द्युति-पाकर भाता तुरत-राग से रीता है॥

७/२५३

निज आतम को नहिं जानता पर में रत, पा विकारता,
विषय-वासना वश निज को शठ सकल द्रव्यमय निहारता।
परका निज में अभाव लख, पर परको पर ही जान व्रती,
निज के शुचितम बोध तेज में स्यद्वादों रममान यती॥

८/२५४

भिन्न क्षेत्र स्थित पदार्थ-दल को विषय बनाता अपना है,
बाहर भ्रमता, मरता निज को परमय लख शठ सपना है।
निज को निज का विषय बनाकर निज में निज बल समेट कर
आत्म क्षेत्र में रत स्याद्वादी होता पर-धन सुमेट कर॥

९/२५५

आत्मक्षेत्र में स्थिति पाने शठ भिन्न-क्षेत्र में स्थित पदार्थपन,
तजे संग तज चिति गत-ज्ञेयों मरता तजता निजार्थ पन।
निज में स्थित होकर लखता नित पर में निज की अभावता,
स्याद्वादी मुनि पर तजता पर तजता कभी न स्वभावता॥

१०/२५६

पूर्व ज्ञान का विषय बना था उसको नशता लख सो ही,
स्वयं ज्ञान का नाश मान पशु मरता हताश हो मोही।
बाह्य वस्तुएँ बार बार उठ मिटती, परन्तु स्याद्वादी,
स्वीय काल वश, त्रिकाल ध्रुव निज-को लख रहता ध्रुव स्वादी

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन्पशुर्नश्यति ।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन्स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनि खाननित्यसहज ज्ञानैकपुञ्जीभवन् ॥

१२

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः ।
सर्वस्मान्नियत स्वभावभवन ज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥

१३

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः
सर्वत्राप्यनिवारितोगतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति ।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसतिस्वस्य स्वभावं भरा
दारुढः परभावभावविरहव्यालोक निष्कम्पितः ॥

१४

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद्ज्ञानांशनानात्मना[1]
निर्ज्ञानात् क्षणभङ्गसङ्ग पतितः प्रायः पशुर्नश्यति ।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं
टङ्कोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ॥

१५

टङ्कोत्कीर्णविशुद्धबोध विसराकारात्मतत्त्वाशया
वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किञ्चन ।
ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं
स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तु वृत्तिक्रमात् ॥

१. 'महत्' इत्यपि पाठः ।

११/२५७

ज्ञेयालम्बन जब से तब से-ज्ञान हुआ यों कहे वृथा,
ज्ञेयालम्बन लोलुप बन शठ पर में रमते सहे व्यथा।
भिन्न काल का अभाव निज में मान जान पै गत मानी,
सहज, नित्य निज-निर्मित शुचितम ज्ञान पुंज में रत ज्ञानी ।।

१२/२५८

पर परिणति को निज परिणति लख पर में पाखण्डी रमता,
निज महिमा का परिचय बिन पशु एकान्ती भवभव भ्रमता।
सबमें निज निज भाव भरे हैं उन सबसे अति दूर हुआ,
प्रकट निजातम को अनुभवता स्याद्वादी नहिं चूर हुआ ।।

१३/२५६

विविध विश्व के सकल ज्ञेय का उद्भव अपने में माने,
निर्भय स्वैरी शुद्ध भाव तज खेल-खेलते मन माने ।।
पर का मुझमें अभाव निश्चित समझ किन्तु यह मुनि ऐसा,
निजारूढ़स्याद्वादी निश्चल लसे शुद्ध दर्पण जैसा।

१४/२६०

उद्भव व्यय से व्यक्त ज्ञान के विविध अंश को देख, तभी
क्षणिक तत्त्व को मान कुधी जन सहते दुख अतिरेक सभी।
पै स्याद्वादी चितिपन सिंचित सरस सुधारस सु पी रहा,
अडिग अटल बन शुद्ध-बोध धन सुजी रहा, मुनि सुधी रहा ।।

१५/२६१

निर्मल निश्चल बोध भरित निज आतम को शठ जान अहा।
उजल उछलती चिति परिणति से भिन्न आतम पर मान अहा,
नित्य ज्ञान हो भंगुर बनता उसे किन्तु द्युतिमान वही,
चेतन-परिणति बल से ज्ञानी ज्ञान क्षणिकता लखे सही ।।

१६

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसादयन् ।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ।।

१७

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन्स्वयम् ।
अलङ्घ्यं शासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ।।

१८

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः ।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तं चित्रं
तद्द्रव्यपर्य्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ।।

१९

नैकान्तसङ्गतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः ।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो
ज्ञानीभवन्ति जिननीतिमलङ्घयन्तः ।।

२०

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां
भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः ।
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धाः
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ।।

१६/२६२

तत्व ज्ञान से बंचित ऐसे मूढ़ जनों को दर्शाता,
ज्ञान मात्र वह आत्म तत्व है साधु जनों को हर्षाता।
अनेकान्त यह इस विधि होता सतत् सुशोभित अपने में
स्वयं स्वानुभव में जब आता मिटते सब हैं सपने ये ॥

१७/२६३

वस्तु तत्व की सरल व्यवस्था उचित रूप से करता है।
अपने को भी उचित स्थान पर स्थापित खुद ही करता है।
तीन लोक के नाथ जिनेश्वर जिन-शासन पावन प्यारा,
अनेकान्त यह स्वयं सिद्ध है विषय बनाया जग सारा

१८/२६४

इस विध अनेक निज बल आकर होकर आतम भाता है,
सहज ज्ञान-घन को फिर भी नहिं तजता पावन ज्ञाता है।
आतम द्रव्य पर्यय का न्यारा अक्षय अव्यय केतन है,
क्रम-अक्रम वर्ती पर्यय से शोभित होता चेतन है ॥

१९/२६५

वस्तु तत्व ही अनेकान्त मय स्वयं रहा गुरु लिखते हैं,
अनेकान्त के लोचन द्वारा जिसे सन्त जन लखते हैं।
स्याद्वाद की ओर शुद्धि पा बनते मुनिजन वे ज्ञानी,
जिन मत से विपरीत किन्तु ना जाते बन के अभिमानी ॥

२०/२६६

किसी तरह कर यत्न सुधी जन वीत मोह बन गत रागी,
केवल निश्चल ज्ञान भाव का आश्रय करते बड़ भागी।
शिव का साधक रत्नत्रय वे फलतः पाकर शिव गहते, ।
मूढ़ मोहवश विरागता बिन भव भव भ्रमते दुख सहते ॥

२१

स्याद्वादकौशल सुनिश्चलसंयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री-
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥

२२

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः
शुद्धः प्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः ।
आनन्दसुस्थित सदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥

२३

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ।
कि बन्धमोक्षपथपातिभिरन्य भावै-
र्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥

२४

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्डयमानः ।
तस्माद खण्डमनिराकृतखण्डमेक-
मेकान्त शान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥

२५

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञान मात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गद् ज्ञान ज्ञेयज्ञातृवद्वस्तुमात्रः ॥

२१/२६७

स्याद्‌वाद से पूर्ण कुशलता पा अविचल संयमधारी,
पल पल अविरल अविकल निर्मल निज को ध्यावे अविकारी।
ज्ञानमयी नय क्रियामयी नय इन्हें परस्पर मित्र बना,
पाता मुनिवर वही अकेला शुद्ध चेतना मात्र पना ॥

२२/२६८

चेतन रस का पिण्ड चण्ड है सहज भाव से विहस रहा,
विराग मुनि में इस विधि आतम उदित हुआ है विलस रहा।
चिदानन्द से अचल हुआ वह एक रूप ही सदा हुआ,
शुद्ध ज्योति से पूर्ण भरा है प्रभात सुख का सदा हुआ ॥

२३/२६९

शुद्ध-भावमय विराग-मम-मन में जब द्युति पन उदित हुआ।
स्याद्‌वाद से झगर झगर कर स्फुरित हुआ है मुदित हुआ।
अन्य भाव से फिर क्या मतलब भव या शिव पथ में रखते,
स्वीय भाव बस उदित रहे यह यही भावना मुनि रखते ॥

२४/२७०

यद्यपि बहुविध बहुबल आलय आलम तमनाशक साता।
नय के माध्यम ले लखता हूँ खण्ड खण्ड हो नश जाता।
खण्ड निषेधित अतः किए बिन अखण्ड चेतन को ध्याता ॥
शान्त शान्ततम अचल निराकुल छविमय केवल को पाता ॥

२५/२७१

ज्ञान मात्र हो ज्ञेय रूप में यह जो मैं शोभित होता,
किन्तु ज्ञेय का ज्ञान मात्र नहि तथापि हूँ बाधित होता।
ज्ञेय रूप धर ज्ञान विकृतियां सतत् उगलती उजियाली,
परन्तु ज्ञाता ज्ञान-ज्ञेयमय वस्तु मात्र मम है प्यारी ॥

२६

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिदमेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम ।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः
परस्परसुसंहृतप्रकट शक्ति चक्रं स्फुरत् ।।

२७

इतोगतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता
मितः क्षणविभङ्गुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ।।

२८

कपायकलिरेकतः स्खलति शान्तिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः ।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिताऽऽत्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ।।

२९

जयति सहजतेजः पुञ्जमज्जत्रिलोकी-
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः ।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ।।

३०

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयद्ध्वस्तमोहम् ।
उदितममृतचन्द्र ज्योतिरेतत्समन्ता-
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ।।

२६/२७२

आत्म तत्व मम चित्रित दिखता कभी चित्र बिन लसता है,
चित्राचित्री कभी कभी वह विस्मित संस्मित हँसता है।
तथापि निर्मल बोध-धारि के करें न मन को मोहित हैं,
चूँकि परस्पर बहुविध बहुगुण मिले आत्म में शोभित हैं ॥

२७/२७३

द्रव्य दृष्टि से एक दीखता पर्ययवश वह नैक रहा,
क्षण-क्षण पर्यय मिटे क्षणिक हैं ध्रुव, गुण वश तू देख अहा।
ज्ञान-दृष्टि से विश्व व्याप्त पर स्वीय-देश में खड़ा हुआ,
अद्भुत वैभव सहज आत्म का देखो निज में पड़ा हुआ ॥

२८/२७४

बहती जिसमें कषाय-नाली शान्ति सुधा भी झरती है,
भव-पीड़ा भी वहीं प्यार कर मुक्ति-रमा मन हरती है।
तीन लोक भी आलोकित हैं अतिशय चिन्मय लीला है,
अद्भुत से अद्भुत-तम महिमा आतम की जय शीला है ॥

२९/२७५

सकल विश्व ही युगपत् जिसमें यदपि निरन्तर चमक रहा,
तदपि एक बन जयशाली है सहज तेज से दमक रहा।
निज-रस पूरित रहा अतः वह तत्त्व बोध से सहित रहा,
चेतन का जो चमत्कार है अचल व्यक्त हो स्फुरित रहा ॥

३०/२७६

चेतन-मय-शुचि "अमृतचन्द्र" की सौम्य ज्योति अवभासित है,
अविचल-आतम में आतम से आतम को कर आश्रित है।
बाधा विन वह रही अकेली रही न काली मोह निशा,
फैली परितः विमल धवलिमा उजल उठी है दशों दिशा ॥

३१

यस्माद्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किञ्चिन्न किञ्चित्किल ॥

३२

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं **समयस्य** शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्त्तव्यमेवा**मृतचन्द्रसूरेः** ॥

इति समयसार कलशाः समाप्ताः ॥

३१/२७७

स्वपर रूप यह विपर्यय हो प्रथम ऐक्य कर निज तन में,
रागादिक कर आतम उलझे कर्तृ-कर्म के उलझन में।
कर्म कर्म फल चेतन का फिर अनुभव वश नित खिन्न हुआ,
ज्ञान रूप में निरत वही अब तन मन से अति भिन्न हुआ ॥

३२/२७८

वस्तु-तत्त्व की यथार्थता का वर्णन जिसने किया सही,
शब्द-समय ने समयसार का स्वयं निरूपण किया यही।
कार्य-रहा नहिं अब कुछ करने "अमृत चन्द्र" हैं सूरियदा,
लुप्त गुप्त हैं सुसुप्त निज में सुख अनुभवता भूरि सदा ॥

श्री अमृतचन्द्रसूरये नमः

— दोहा —

मेटे वाद विवाद को निर्विवाद स्याद्वाद !
सब वादों को खुश रखे पुनि पुनि कर संवाद ॥

समता भज, तज प्रथम तू पक्षपात परमाद !
स्याद्वाद आधार ले समयसार पढ़ बाद ॥

—वसन्ततिलका छन्द—

आशीष लाभ तुमसे यदि मैं न पाता,
जाता लिखा नहिं "निजामृतपान" साता।
दो "ज्ञान सागर" गुरो ! मुझको सुविद्या,
विद्यादिसागर बनूं तजदूं अविद्या ॥

दोहा

कुन्दकुन्द को नित नमूं हृदय कुन्द खिल जाय।
परम सुगन्धित महक में जीवन मम घुल जाय ॥

अमृतचन्द्र से अमृत है झरता जग-अपरूप।
पी पी मम मन मृतक भी अमर बना सुख कूप ॥

तरणि "ज्ञान सागर' गुरो ! तारो मुझे ऋषीश।
करुणाकर ! करुणा करो कर से दो आशीष ॥

— सुफल —

मुनि बन मन से जो सुधी करें "निजामृतपान"
मोक्ष और अविरल बढ़े चढ़े मोक्ष सोपान ॥

मंगल कामना

दोहा

विस्मृत मम हो विगत सर्व विगलित हो मद मान।
ध्यान निजामत का करूँ करूँ निजी गुण गान ॥१॥
सादर शाश्वत सारमय समयसार को जान।
गट गट झट पट चाव से करूँ "निजामृतपान" ॥२॥
रम रम शम दम में सदा मत रम पर में भूल।
रख साहस फलतः मिले भवकापल में कूल ॥३॥
चिदानन्द का धाम है ललाम आतम राम।
तन मन से न्यारा दिखे मन पे लगे लगाम ॥४॥
निरा निरामय नव्य मैं नियत निरंजन नित्य।
जान मान इस विध तजूं विषय कषाय अनित्य ॥५॥

कटुता तज मन वचन में धारो बन नवनीत।
तब जप तप सार्थक बने प्रथम बनो भवभीत ॥६॥
पापी से मत पाप से घृणा करो अयि ! आर्य।
नर ही वह बस पतित हो पावन कर शुभ कार्य ॥७॥

— भूल क्षम्य हो —

लेखक, कवि मैं हूँ नहीं मुझमें कछु नहीं ज्ञान,
त्रुटियाँ होवें यदि यहाँ, शोध पढ़ें धीमान् ॥८॥

— स्थान एवं समय परिचय —

कुण्डल गिरि के पास है, नगर दमोह महान,
ससंघ पहुँचा पुनि जहाँ भवि-जन पुण्य महान ॥९॥
देव-गगन गति गंध की वीर जयन्ती आज।
पूर्ण किया इस ग्रन्थ को निजानन्द के काज ॥१०॥

●

वीर स० २५०४ की "वीर जयन्ती" के दिवस पर
यह "निजामृतपान" दमोह नगर मे सानन्द संपूर्ण हुआ है।



विनय का विकास करो !

विनय से असाध्य कार्य भी साध्य बन जाते हैं !

—आचार्य विद्यासागर